UNIVERSAL
LIBRARY

OU_180104

UNIVERSAL
LIBRARY

-43—30-1-71—5,000

OSMANIA UNIVERSITY LIBRARY

Call No Accession No

Author

Title

This book should be returned on or before the date last marked below.

'गबन' : एक अध्ययन

लेखक

प्रेमनारायण टंडन, एम. ए., साहित्यरत्न

प्रकाशक

विद्यामंदिर, रानीकटरा, लखनऊ

प्रथम संस्करण] जून, १९४५ [मूल्य : चौदह आने

प्रकाशक

विद्यामंदिर, रानीकटरा, लखनऊ

प्रथम संस्करण

जून, १९४९

चौदह आने

मुद्रक

धनवन्तरि आर्ट प्रेस

रकाबगंज-लखनऊ

निवेदन

—*—

'गबन' की गणना यों तो प्रेमचन्द जी की श्रेष्ठ कृतियों में है; परंतु मध्यमवर्गीय वर्तमान स्थिति का परिचय देने की दृष्टि से यह उनकी सर्वश्रेष्ठ रचना मानी जाती है। यथार्थवादी लेखक के रूप में प्रेमचंदजी संभवतः अपनी इसी कृति में ठीक अर्थ में मिलते हैं। यह भी इस रचना की एक उल्लेखनीय विशेषता है।

प्रस्तुत पुस्तक में प्रेमचंद जी के इसी उपन्यास का संक्षिप्त अध्ययन है। स्वर्गीय बाबू जयशंकर 'प्रसाद' के प्रमुख तीन नाटकों की ऐसी आलोचना पाठकों को उपयोगी जान पड़ी है। इसी प्रोत्साहन का फल यह 'अध्ययन' समझना चाहिए।

'गबन' कई विश्वविद्यालयों की बी० ए० और एम० ए० परीक्षाओं के लिए स्वीकृत है। आशा है, इनके परीक्षार्थियों का प्रस्तुत 'अध्ययन' से थोड़ा-बहुत मनोरंजन अवश्य होगा।

२५ जून १९४५]

प्रे० ना० टंडन

विषय-सूची

विषय		पृष्ठ
१	परिचयात्मक आलोचना ...	५
२	अध्यायों का साहित्यिक महत्व ...	१०
३	उपन्यास की समस्याएँ ...	२३
४	उपन्यास के तत्व ...	३३
५	(कथा-विकास—३३, उत्सुकता-वृद्धि—३४, पात्र—३८, भाषा—४०, शैली—४५, कथोपकथन—५१,) देशकाल का प्रतिबिंब—५३,)	
५	कला की कसौटी ...	५७
६	चरित्र-चित्रण ...	६६
	(रमानाथ—७४, जालपा—८१, देवीदीन—८७)	
७	खटकने वाली बातें ...	८६

परिचयात्मक आलोचना

सन् १९३० तक प्रेमचंद कई प्रसिद्ध उपन्यासों की रचना कर चुके थे। साहित्य में उनका पद प्रतिष्ठित हो चुका था। वे उपन्यास-सम्राट् बन चुके थे। साहित्य-प्रेमी और उपन्यासों के पाठक उनसे बड़ी-बड़ी आशाएँ कर रहे थे। इसी समय सन् १९३१ में उन्होंने 'गबन' प्रकाशित कराया। इस उपन्यास का संबंध भारत के उस मध्यम वर्ग से है, जो आर्थिक संकट सहकर भी सामाजिक क्षेत्र में अपनी नाक बचाने के लिए ऋण लेने और फलस्वरूप अपना भावी जीवन दुःखमय बनाने पर विवश-सा हो गया है; फैशन का भूत जिसके सर पर सवार होकर तरह-तरह के त्रास देता है और फलस्वरूप जिसका शरीर और मन चिन्ता से जर्जर हो रहा है। वर्तमान समय की स्थिति ने पैसे-वाले को ही सुखी बना रखा है। इसलिए अच्छे और बुरे, उचित और अनुचित किसी भी ढंग से पैसा पैदा करना ही आज हमारा आदर्श हो रहा है। 'गबन' में हम देखते हैं कि ईमानदारी से पैसा पैदा करनेवाले व्यक्ति से उसकी स्त्री नाराज है, पुत्र नाराज है और पतोहू भी नाराज है। प्रसन्न सब लोग उसीसे हैं जो झूठ बोलकर, चालाकी करके, घूस लेकर अथवा भोले-भाले व्यक्तियों को उल्टे छुरे से मूड़कर अधिक से अधिक धन कमा ला सकता है।

उपन्यास में उक्त निष्कर्ष तक हम परोक्ष रूप से पहुँचते हैं। प्रत्यक्ष कथानक कुछ और संकेत करता है। आभूषण चाहनेवाली एक नव-

युवती इसकी नायिका है। बालिकाओं या नवयुवतियों के लिए आभूषणों की यह चाह नितांत स्वाभाविक है। जीवन में किसी वस्तु का अभाव उसकी ओर हमें और भी आकर्षित कर देता है। उपन्यास की नायिका जालपा की भी जड़ाऊ हार की चाह इसीलिए बढ़ गयी कि वह उसे उसकी ससुराल से न चढ़ा। उसका पति रमानाथ शिक्षित है, युवक है, नयी रोशनी का है और प्रेमी भी है। अपनी सुंदर स्त्री के सामने अपने घर की दीन दशा कहते तो शरमाता है ही साथ ही अपने ऐश्वर्य की झूठी कहानी गढ़कर उसे सुनाते भी नहीं हिचकिचाता। नववधू उसकी बातों का विश्वास करके अपनी चाह प्रकट करती है। रमानाथ उसकी इच्छा पूरी करना चाहता है। पर, दफ्तर में वह एक मामूली क्लर्क है; इसलिए अपनी बात रखने, अपनी झूठी शान निभाने के लिए वह उधार गहने लाने पर विवश होता है। उधर नववधू का साथ एक धनी वकील की स्त्री से हो जाता है। रमानाथ अपनी शान निभाने के विचार से धनियों की तरह अपनी स्त्री का रहना, घूमना, चाय-पानी करना, सब कुछ स्वीकार करता है। अंत में, ऋण न दे सकने के कारण उसपर इतने तकाजे होते हैं कि उसका घर से बाहर निकलना मुश्किल हो जाता है। दो-एक ऐसी ही उल्टीसीधी चालें चलने के बाद आफिस से गबन करके वह घर से भाग खड़ा होता है।

उपन्यास की कथा तो यहाँ से आगे बढ़ती है; परन्तु रमानाथ का चरित्र यहीं समाप्त हो जाता है। जब तक हमारा पैर कीचड़ में नहीं पड़ता हम अपने को उससे दूर रखना चाहते हैं। जब एक बार हम कीचड़ में फँस जाते हैं तब आगे भी हम उससे घृणा नहीं करते। रमानाथ भी अब बुराई से नहीं डरता। वह झूठ बोल

सकता है, भीख माँग सकता है, निरपराधों को फँसा सकता है, वेश्याके हाथ की कठपुतली बनने में इसे संकोच नहीं होता । लेखक ने भी अब उसे सँभालने की आवश्यकता नहीं समझी है । शायद वह चाहता है कि ऐसे युवक की जो बुरी से बुरी दशा हो सकती है, रमानाथ सब भुगत ले ।

परन्तु जालपा का चरित्र यहीं से उन्नत होता है । 'धीरज, धर्म, मित्र अरु नारी, आपतकाल परखिये चारी ।' वाली बात इसी स्थल से जालपा के सामने आती है । पति के घर से भागने के कारण का ज्योंही उसे पता चलता है, वह अपने शृंगार की सभी फैशनवाली चीजें गंगा में प्रवाहित कर देती है । यह हिन्दू-नारी की एक झलक मात्र है । वह फैशन की चीजों पर नहीं मरती, पति को चाहती है । आरंभ से उसे गहनों की चाह अवश्य थी; पति का सच्चा प्रेम पाकर वह पूर्णतः संतुष्ट हो गयी थी और यदि रामनाथ ने अपनी कल्पित समृद्धि का अत्यंत आकर्षक चित्र न खींचा होता तो वह गहनों के लिए कदापि उससे आग्रह न करती । 'गबन' में जो कुछ भूल हुई है, उपन्यासकार ने उसका दोषी रामनाथ को ही ठहराया है—उसकी नायका सर्वथा निर्दोष है । फिर भी वह अपने को ही दोषी समझती है और उसके प्रायश्चित के लिए कठोर से कठोर दंड स्वीकारने को प्रस्तुत है । पति का पता लगाने और पुलिस के कठोर, भयंकर और विषैले पंजों से उसे बचाने के लिए जिन-जिन युक्तियों से काम करके चतुरता का, विवश पति की झूठी गवाही के फलस्वरूप चौपट हुए निर्दोष और कच्चे परिवारों की सभी प्रकार से सेवा करके जिस महान सहनशीलता का उसने परिचय दिया है यह प्रेमचंद के श्रेष्ठतम उपन्यासों की नायिकाओं के लिए भी दुर्लभ है ।

जालपा के चरित्र की यही विशेषता है जिसने 'गबन' को प्रेमचंद के श्रेष्ठ उपन्यासों में उच्च स्थान दिलाया है।

उपन्यास के अन्य पात्रों में जग्गो, रतन, जोहरा, रमेश और देवीदीन हैं। इनके चरित्र का चित्रण भी लेखक ने बड़े परिश्रम से किया है और सभी के विचारों और आदर्शों से हम थोड़ा-बहुत प्रभावित अवश्य होते हैं। परन्तु इनमें सबसे प्यारा और आकर्षक चित्र देवीदीन का है। जाति का वह खटिक है। कभी-कभी वह नशा-पानी भी करलेता है जिसके लिए उसकी स्त्री बराबर ताड़ना दिया करती है। परंतु अतिथ्य सत्कार की वह महान् भावना, जो भारतीय संस्कृति की श्रेष्ठता, समृद्धि तथा ऐश्वर्य की अधिकता की द्योतक है, सरलता और सत्यप्रियता की वह महान भावना, जो भारतीय जीवन की नैसर्गिकता और पवित्रता की द्योतक है, और निस्वार्थ देश-प्रेम की वह महान भावना, जो मातृभूमि के प्रति स्व-कर्तव्य पालन और ऋण स्वीकृति की द्योतक है, उसके चरित्र को बहुत सुन्दर बना देती है।

प्रश्न यह है कि प्रेमचंद के ये पात्र क्या कल्पित हैं? जीवन भर समाज और व्यक्ति का गंभीर अध्ययन करने वाले प्रेमचंद ने इन पात्रों की सृष्टि अपनी कल्पना द्वारा की है अथवा वे हमारे भारत के ही ऐसे प्राणी हैं जिन्हें हम अपने चारो ओर नित्य प्रति देखते हैं। हमारी सम्मति में रमानाथ, जालपा, देवीदीन, जग्गो और रतन नित्य प्रति हमारे संपर्क में आते हैं। वे अपने-अपने वर्ग के प्रतिनिधि हैं। रमानाथ के चरित्र में, संभव है, किसी को अस्वाभाविकता मिले, और यह पूछा जाय कि पढ़ा-लिखा चतुर युवक कैसे एक के बाद दूसरी गल्ती करता और अपने पैर में कुल्हाड़ी मारता चला

जाता है। वस्तुतः उसकी दशा उस भोले-भाले हिरन की सी है जो एक बार जाल में फँसकर जितनी ही उससे अपने छूटने की कोशिश करता है, उतना ही उलझता जाता है।

यही बात कथानक और उन सामायिक समस्याओं के संबंध में कही जा सकती है, जिनके विषय में 'गबन' के लेखक ने प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से विचार किया है। संभव है पुलिस के हथकंडों और कचहरी की कार्यवाही में कुछ बातें घटा-बढ़ाकर कही गई हों, परंतु लेखक ने इनपर 'लोहे हाथ' ही कुछ कह दिया है। वर्तमान समय में मध्यम वर्ग की स्थिति, अतिशय आभूषण-प्रेम, अनमेल विवाह, फैशन का भूत, स्वदेशी आन्दोलन आदि गम्भीर बातों पर ही लेखक ने कई दृष्टियों से विचार किया है। इनका वर्णन अत्यंत मार्मिक, प्रभावोत्पादक और सजीव है। उपन्यास की सफलता का यही रहस्य है।

'सेवासदन', 'प्रेमाश्रम' और 'रंगभूमि'-जैसे उपन्यासों के प्रौढ़, कुशल और सफल लेखक की भाषा की प्रांजलता, प्रौढ़ता और प्रवाह-पूर्णता, शैली की उपयुक्तता प्रभावोत्पादकता, और यथावसर परिवर्तन शीलता तथा कथोपकथन की मार्मिकता, स्वाभाविकता और सजीवता के संबंध में स्वतंत्र रूप से आगे विचार किया जायगा।

सारांश यह कि 'गबन' लेखक की सफल रचना है। प्रेमचंद के अन्य उपन्यासों से इनका कथानक भिन्न है, यद्यपि कहीं-कहीं सामयिक समस्याएँ पूर्व-उपन्यासों की भी अपना ली गयी हैं। विषय की प्रतिपादन-प्रणाली भी इस उपन्यास की भिन्न है। अन्य उपन्यासों में प्रेमचन्द समुदाय को लेकर चले हैं और वर्ग की समस्याओं पर विचार किया है। 'गबन' की समस्या व्यक्तिगत है और एक परिवार तक ही सीमित रहती है। यह ठीक है कि समस्त मध्यम वर्ग आज

फैशन, अति आभूषण-प्रेम और आर्थिक संकट से पीड़ित है; परंतु उपन्यास में हम केवल एक परिवार को ही इनका फल भोगते हुए देखते हैं—पूरे परिवार का भी नहीं, केवल एक दंपति को ही। हाँ, जिन बातों को लेकर कथानक का विकास दिखाया गया है, वे सार्वजनीन और सार्वकालीन हैं। लेखक ने मानव हृदय की अनेक भावनाओं—सुख-लालसा, ऐश्वर्य की चाह, पति-पत्नी-प्रेम आदि का सुन्दर विश्लेषण किया है। इसी से 'गबन' को हम हिंदी-उपन्यास की स्थायी चीज समझते हैं।

अध्यायों का साहित्यिक महत्व

एक अध्याय—साधारण परिचयात्मक वाक्य जिसका सबसे महत्व-पूर्ण वाक्य है—बहूजी चार दिनों में तो 'बिटिया को असली चंद्रहार मिल जायगा। बड़ी बड़ी आँखों वाली बिटिया इस कथन का अर्थ नहीं समझती समझना भी नहीं चाहती, क्योंकि अपनी 'बाल-संपत्ति'—बिल्लौर के चमकदार हार—को पाकर ही उसके आनंद की सीमा नहीं है। हाँ माता के हृदय पटल पर सहृदयता भरे ये शब्द अंकित हो जाते हैं और पाठकों की उत्सुकता भी बढ़ती है

दो—माता का नया चंद्रहार देखकर बालिका की इच्छा असली के लिए जागती है। माता के यह कहने पर कि ऐसा हार तेरी ससुराल से आयगा, वह उस दिन की प्रतीक्षा करती है जब उसकी चिरसंचित अभिलाषा पूरी होगी।

तीन—जालपा के ससुर की आर्थिक दशा का परिचय देने से लेखक का संकेत है कि चंद्रहार की बात तो दूर, नववधू के लिये मामूली गहनों की आशा भी कम ही है।

चार—शील और सौजन्य का प्रभाव बड़े आकर्षक ढंग से इस दृश्य में दिखाया गया है। दीनदयाल ने एक हजार का टीका दिया; इसलिए नहीं कि वे लड़की का विवाह दिल खोलकर करना चाहते है या सोंचते हैं कि मेरे आगे-पीछे कोई नहीं है सब हौसला एक बार ही क्यों न निकाल लूँ; बल्कि इसलिए कि दयानाथ की सज्जनता ने उन्हें वशीभूत कर लिया। पचास रुपए मासिक पाने वाला कचहरी का क्लर्क दयानाथ जो पहले लड़के की शादी ही नहीं करना चाहता था, बहू के लिए तीन हजार के गहने बनवा लेता है; इसलिए नहीं कि उसमें उत्साह है, हौसला है, बल्कि इस लिए कि दीनदयाल की सहृदयता ने उसका संयम तोड़ दिया है।

पाँचवा—जालपा का विवाह। चढ़ावे में चंद्रहार न आने से आशा-लता पर तुषारपात जिससे आगे की कथा जानने के लिए उत्सुकता बढ़ती है। चढ़ावे के समय गाँव के स्त्री पुरुषों-द्वारा 'विशेषज्ञों की भाँति' आभूषणों की आलोचना करा कर लेखक ने जन मनोवृत्ति की जानकारी का परिचय दिया है। चढ़ावे के अवसर पर हमसहेलियों की बातचीत में चंद्रहार के अभाव के कारण रस नहीं रह जाता; परंतु शहजादी का जालपा का मान करने का 'गुर सिखाना' हर्ष के इस अवसर पर पाठकों को गुदगुदा अवश्य देता है, यद्यपि जालपा के प्रति सहानुभूति के कारण वे खिलखिला कर हँसना पसंद नहीं करते।

छः—विवाह-जैसे शुभ अवसरों पर बिरादरी में नाक कटने के

डर से या वाहवाही लूटने के लोभ से अपनी हैसियत से ज्यादा खर्च करलेने का परिणाम है पारिवारिक कलह, मानसिक अशांति और पश्चाताप—यही इस अध्याय में दिखाया गया है।

सातवाँ—जेठ की सुनहरी चाँदनी। रमा के मानसिक द्वंद का चित्रण इस परिच्छेद की विशेषता है।

आठवाँ—आरंभ में 'आभूषण-मंडित संसार में पली' जालपा के बालकाल की चर्चा करके उसके आभूषण-प्रेम की स्वाभाविकता सिद्ध की गई है। अंतिम भाग में निठल्लापन छोड़ कर रमा का नौकरी करने को प्रस्तुत हो जाना नए जीवन में पदार्पण करने का संकेत है।

नौ—रमेश बाबू का परिचय जिनकी दिनचर्या में कलकों के उद्देश्य आदर्शहीन जीवन की झलक मिलती है।

दस—जालपा की प्रकृति का नया परिचय। पति के नौकर होते ही उसका स्वाभिमान जागता है। माता के भेजे हार को अब वह भीख समझती है और उसे लौटा कर ही शांत होती है; सास-ससुर के प्रति घृणा या तिरस्कार की भावना उसमें है; परंतु इस संबंध में लेखक का संकेत है कि इसका कारण है उनकी आर्थिक स्थिति के संबंध में जालपा का वह भ्रम जो रमाकी झूठी डींगो के फलस्वरूप जन्मा था।

ग्यारह—जालपा की विवशता और निराशा का जिन्हें वह प्रयत्न करके दबाना चाहती है, लेखक ने यहाँ सूक्ष्मता से चित्रण किया है।

बारह—जालपा की मनोव्यथा का परिचय देकर लेखक उसका चरित्र सम्हाल लेता है। कर्ज की भयानकता न समझने वाला रमा अब अपने सर पर बोझ लादने को ही तैयार हो जाता है। उसके इस कार्य से पाठक की उत्सुकता बढ़ती है।

तेरह—प्रथम बार कर्ज लेने वाले व्यक्ति का संकोच जो मन में उठने वाले आनन्द के भाव को भी दबा लेता है, सराफ की फँसाने वाली बातें, पति के ऊपरी कमरे में चले जाने पर जालपा का स्वयं इस तरह नीचे रह जाना जैसे वह भूल गई हो कि रमा हार लेने गया है और पति का स्त्री का दिल टटोलने के लिए हार न मिलने का बहाना करना आदि प्रसंग परिच्छेद को मनोरंजक बनाने के लिए पर्याप्त हैं।

चौदह—मध्यम वर्ग की माता के, जो जीवन भर दुखिया रही है और जीवन में जिसकी कोई साध पूरी नहीं होती, आभूषण-प्रेम और वात्सल्य का मार्मिक द्वंद्व तथा परिस्थिति और प्रेम का भीषण संघर्ष यहाँ दिखाया गया है। दो नए आभूषण देखकर जालपा के सेवा-भाव-प्रधान हृदय का संयम किस प्रकार नष्ट होता है, और भविष्य की ओर से आँख मूँद कर किस प्रकार पति पर वह लंबा बोझ कर देती है, कथा की भावी गति पर वह लंबा बोझ कर देती है, कथा की भावी गति-विधि से इन बातों का घनिष्ट संबंध है।

पन्द्रह—पुराना-रहन-सहन अपनाने वाला मध्यम वर्ग का परिवार थोड़ा रूप और थोड़ा धन पाकर नई रोशनी के चक्कर में किस तरह पड़ता है, कैसे कैसे नए शौक उसके मन में पैदा होते हैं, किस प्रकार अनिच्छा से वह बड़े आदमियों का निमंत्रण स्वीकारता है और परिचय हो जाने के बाद ऊपरी लेसा-पोती से किस तरह अपनी वास्तविक मर्यादा निबाहने का वह प्रयत्न करता है. आदि बातें इस अध्याय में हैं। रतन का कंगन के लिए रूपए और जालपा का उसे निमंत्रण देना, दोनों बातें आगे की कथा से संबंध रखती हैं। घर सजाने के मामले को लेकर अँगरेजों की नकल करने की चाह रखने

वाले मध्यवर्गीय पुरुषों के हौसलों की लेखक ने मीठी आलोचना की है।

सोलह—रमा की अदूरदर्शिता के परिणामस्वरूप उसे रतन से मुँह चुराना पड़ता है। मिथ्या आत्माभिमान उसके लिए कितना भयानक गड़्ढा खोद रहा है, इसकी वह जरा भी चिन्ता नहीं करता। जालपा अपनी बुद्धि से उसकी दुश्चिन्ता का अनुमान कर लेती है; परंतु रमा इस पर भी साहस और निष्कपटता से काम नहीं लेता; रतन के रुपए अदा करने के लिए निर्धन रमा का दस दिन का वादा पाठकों की उत्सुकता बढ़ाता है।

सत्रह—साधारण कथा-प्रधान दृश्य। 'मित्रों से लेन-देन के व्यवहार का परिणाम मनमुटाव' होगा, यह एक संकेत रमेश के पत्र से मिलता है। रमा अपना ऋण कैसे अदा करेगा, यह जानने के लिए उत्सुकता बढ़ जाती है और पाठक आगे का हाल जानने के लिए विकल हो जाता है।

अठारह—रतन की दी हुई मोहलत का अंतिम दिन। रमा की संकोची प्रकृति और मानसिक स्थिति का बड़े धैर्य से लेखक ने चित्रण किया है। रात्रि में जालपा के स्वप्न की भयंकरता जहाँ उसे भयभीत करती है, वहाँ किसी दिन रमा पर आने वाली भावी विपत्ति की सूचना देकर पाठक को भी चौंका देती है। दृश्य के अंत में जालपा का प्रेमयुक्त गर्व के स्वर में अपने सुख सौभाग्य और संतोष की कहानी कहना रमा को सम्हलने के लिए अंतिम अवसर देना है; परंतु वह इस बार भी चूकता है।

उन्नीस—अदूरदर्शी और अनुभवहीन रमा ने संकोचवश अपनी स्त्री से जो पर्दा किया और शान जमाने के लिए हैसियत से ज्यादा

जो व्यय किया उसका फल उसे आज भुगतना पड़ता है जब पिता के सामने ऋण का सारा भंडा फूट जाता है। परन्तु इतने पर भी रमा को अपना रंग-ढंग बदलते न देख—पत्नी जालपा से पूर्ववत् परदा करके देख— पाठक को निश्चय हो जाता है कि इसके भाग्य में दुख भोगना बदा है।

बीस—रतन के आभूषण-प्रेम की चर्चा करके लेखक उसके पारिवारिक जीवन से संबंध में संकेत करता है जहाँ बूढ़े पति के पास युवती पत्नी को प्रसन्न करने के लिए धन के सिवा और कोई चीज नहीं है। रमा के भाग्य का निर्णय जानने के लिए पाठक की उत्सुकता बढ़ता है; परंतु उसे घोर अंधकार में प्रकाश कोई रेखा नहीं सूझती।

इक्कीस—जालपा के स्वप्न की चर्चा करके लेखक उसकी विचार-शीलता से रमा को प्रभावित कराता है। स्पष्ट है कि रमा पर जो विपत्ति आई, घर छोड़ कर उसे भागना पड़ा, इसके लिए स्वयं वही दोषी है, पत्नी जालपा नहीं; यद्यपि इसी को प्रसन्न रखने के लिए रमा ने उधार गहने बनवाए थे। रेल में देवीदीन से रमा की भेंट करा कर लेखक उसे शीघ्र ही भविष्य की ओर से निश्चिंत कर देता है; अपने नायक को कलकत्ते जैसे विशाल नगर में भेज कर ठोकरें खाने के लिए कदाचित उसे निराश्रित नहीं रखना चाहता। देवीदीन का चरित्र विशेषतायुक्त है। उसका अनुभव-जन्य-ज्ञान रमा जैसे अदूरदर्शी और अनुभवहीन युवक को प्रभावित करने के लिए पर्याप्त है।

बाईस—जालपा की सूझ-बूझ का परिचय। 'तुम बड़े वक्त से आ गईं। इस वक्त तुम्हारी सूझ-बूझ देखकर जी खुश हो गया। सच्ची

देवियों का यही धर्म है।' रमेश बाबू के इस प्रशंसा-पत्र से लेखक का का संकेत है कि शिक्षित और स्वतंत्र वातावरण में पली हुई देवियाँ अवसर पर महत्वपूर्ण काम कर सकती हैं।

तेईस—जालपा के स्वाभिमान से हम यहाँ परिचित होते हैं। सास-ससुर की व्यंग्योक्तियाँ सुनकर भी सखी रतन से उनकी शिकायत न करना और कंगन बेचते समय अपनी दीनता प्रकट न होने देना, चरित्र को ऊपर उठाने वाला है।

चौबीस—जालपा के स्वाभिमान का दूसरा परिचय उस समय मिलता है जब वह पिता दीनदयाल के साथ मायके जाना या उनसे किसी तरह की सहायता लेना अस्वीकार कर देती है। दूसरों को लूटा कर लाए हुए पैसों से खरीदी गई विलासिता और फैशन की सारी चीजें बटोर कर गङ्गा में डुबा देने के पश्चात् उसके जीवन में नवीनता का सूत्रपात होता है। युवावस्था की उन्मादकारी विलास-प्रियता पर, पहली ठोकर खाने पर जालपा की यह विजय रमा के घर से भागने के कारणों में उसके दोषों के अंशों की ओर से पाठक का ध्यान बहुत कुछ हटा देती है। गंगा के मार्ग में रतन से भेंट कराना भी सोद्देश्य है। लेखक चाहता है कि जालपा की दृढ़ता की परीक्षा ले ली जाय; पता हो जाय कि केवल आवेश में ही नहीं, प्रत्युत दुर्बलता पर सच्ची विजय पाकर ही जालपा ने विलास-भावना से मुक्ति पाई है। आगे के जीवन में उसकी यह दृढ़ता बनी रहेगी या नहीं, यह जानने के लिए हम उत्सुक हैं।

पचीस—निर्वासित जीवन में रमा की पौरुषहीनता और अकर्मण्यता का परिचायक दृश्य जिसमें उसने 'जन्मजन्मांतर की संचित मर्यादा' की हत्या करके ब्राह्मण बन कर दान लिया; अपने

आत्माभिमान पर आघात किया। रतन को सामने पाकर भी रमा का पुनः मोह में फँस जाना इसकी भद्दा मूर्खता ही है जिसका समर्थन वह किसी तर्क से नहीं कर सकता। सेठ करोड़ीमल का प्रसंग लेखक ने पूँजीपति वर्ग के प्रतिनिधियों के दोहरे जीवन पर प्रकाश डालने के लिए अपनाया है।

छब्बीस—चरमसीमा तक पहुँचकर कथा यहाँ से उतार की ओर उतरती है। रमा के 'गबन' का हाल देबीदीन को मालूम होता है और पुलिस द्वारा कहीं भी पकड़े जाने की आशंका उसे प्रतिपल भयभीत कर देती है। देबीदीन इस भय पर विजय पा सकता है; क्योंकि उसे मालूम है 'रुपए में बड़ा जोर है'; पर रमा एक तो चोर और दूसरे अनुभवहीन होने के कारण बहुत ही डर जाता है।

सत्ताइस—रमा के व्यवसाय का कलकत्ते में प्रबंध। कलकतिया युवकों की शतरंज नक्शे वाली बातों से युवक-प्रकृति का परिचय मिलता है।

अट्ठाइस—रतन और जालपा की परिस्थितियों के अंतर का प्रश्न हटा कर लेखक ने दोनों के हृदय एक कर दिए हैं; उन्हें बहनों के सच्चे संबंध-सूत्र में बाँध दिया है।

उन्तीस—वकील साहब के अंतिम जीवन की एक झलक। मरते हुए व्यक्ति की विफलता और वृद्ध पति की मृत्यु-आशंका से युवती पत्नी के मनोभावों की व्यथा का चित्रण लेखक ने सतर्कता से किया है।

तीस—युवती रतन के वृद्ध पति के जीवन-दीपक-निर्वाण का मार्मिक चित्रण।

इकतीस—मृत वकील के संबंधी और उत्तराधिकारी भतीजे

मणिभूषण का परिचय।

बत्तीस—रतन और जालपा एक मत होकर रमा का पता लगाने के लिए शतरंज का नकशा छपाने का प्रस्ताव करती है। दयानाथ के स्वभाव की विचित्र-अधीरता का चित्रण विपति और उदासी के सूने वातावरण में भी पाठक को हँसा देता है।

तेंतीस—कथा-प्रवाह की छोटी मोटी सभी धाराएँ एकत्र होकर यहाँ से आगे बढ़ती हैं। रमा कलकत्ते में पुलीस के हाथ में पड़ जाता है।

चौंतीस—पुलिस के हथकंडों का परिचायक दृश्य। रमा को पुलिस ऐसे अवसर पर पा जाती है जब उसके-से पढ़े-लिखे अच्छे कुल के एक युवक की उसे आवश्यकता है। जीवन के अनुभवों से अपरचित रमा पुलिस वालों की बातों में रहमत हो जाता है। देवीदीन और जग्गो का वात्सल्य इस अध्याय की विशेषता है। कथा यहाँ से पतन की ओर तेजी से बढ़ती है। अध्याय के अंत में पुलीस की चालों के संबंध में कही हुई देवीदीन की बातें पाठक की उत्सुकता बढ़ाती है।

पैंतीस—शतरंजी नकशे वाली तरकीब से जालपा को रतन का पता चल जाता है। वह उसे लौटा लाने के लिए घर से चलती हैं। यात्रा के समय विश्वंभर की ऐंठ भरी ईर्ष्या, गोपी को अकड़ और जालपा का भय, इन सभी का चित्रण लेखक की सतर्कता का परिचायक है।

छत्तीस—रमा के सरकारी गवाह बनने की सूचना जालपा को मानसिक व्यथा देती है। उसका निश्चय है कि रमा को इस दलदल से बाहर निकालूँगी। उचित अनुचित किसी भी ढंग से अपना

मतलब साधने वाली पुलिस के चंगुल से अपने पति को छुटाने में वह कैसे सफल होगी यह जानने के लिए हम उत्सुक हैं।

सैंतीस—यह छोटा-सा अध्याय पाठक की उत्सुकताग्नि में घी का काम करता है। रमा से बयान बदलवा लेना अथवा असफल होने पर 'अदालत में जाकर सारा कच्चा चिट्ठा' खोल देने का जालपा का निश्चय आगे की कथा बनाने के लिए विकलकर देता है।

अड़तीस— जालपा के साहस का सुफल उसे मिलता है; महीनों के बिछुड़े पति से उसकी भेंट होती है। विलासियों से घिरे रहने पर रमा के स्वभाव में होने वाला परिवर्तन लेखक की सूक्ष्म अंतर्दृष्टि का परिचय देता है। बँगले में रमा को न पाकर पुलिस के अधिकारियों की क्या दशा होगी, यह जानने के लिए सभी उत्सुक हैं।

उन्तालीस—छः सात महीने बाद मिले पति-पत्नी की बातचीत। रमा का अपने कष्टों को बहुत बढ़ा-चढ़ा कर कहना और जालपा का सिसकियों के साथ सब सुन लेना दोनों की प्रकृति के अनुकूल हुआ है। जालपा के उत्साहित करने पर रमा अपना बयान बदलने को तैयार होजाता है। पुलिस वाले इस सूचना से कितना बौखलायँगे, यह जानने की इच्छा पाठक को होती है और इस तरह लेखक ने आगे की कथा से इस परिच्छेद का संबंध जोड़ दिया है।

चालीस—अनुभवहीन रमा ने पुलिस को जता दिया कि मेरा निश्चय बयान बदलने का है। भावविज्ञान का कुशल ज्ञाता, पुलिस का चतुर डिप्टी यह सुनकर जेल-जीवन की ऐसी भयप्रद और कष्ट-दायक तसवीर उसके सामने खींचता है कि रमा को अपना नवीन विचार छोड़ने पर विवश होने के अतिरिक्त कोई चारा नहीं सूझता।

पुलिस के हथकंडों से हम यहाँ दूसरी बार परिचित होते हैं। जालपा पर इस समाचार का क्या प्रभाव पड़ेगा, यह जानने को सब-उत्सुक हैं।

इकतालीस—पति की मृत्यु के पश्चात सम्मिलित परिवार की विधवा के प्रति निष्ठुर संबंधियों का क्रूर व्यवहार इस अध्याय का वर्ण्य विषय है। रतन जैसी विधवाओं का जीवन हमारे समाज में कितना दीन, निराश्रित और दयनीय है! वृद्ध वकील साहब और युवती रतन के जीवन-नाटक के कुछ करुण दृश्य दिखाने से लेखक का परोक्ष उद्देश्य इसी समस्या में हमें परिचित कराना है।

बयालीस—पुलिस कर्मचारियों से घिरे रमा का झूठा बयान सुनकर जालपा को जो मानसिक व्यथा हुई उसी का मार्मिक वर्णन यहाँ किया गया है। जालपा की आगे की कारवाई जानने की सभी की बड़ी इच्छा है।

तेंतालीस—रमा के झूठे बयान के दुष्परिणाम—मुकदमें का फैसला और निरपराधों को सजा—की कहानी इस परिच्छेद में है। जग्गो और जालपा की जो फटकार रमा को यहाँ सुननी पड़ी, हम जानने को उत्सुक हैं कि उसका कितना असर उस पर होगा और पुलिस पर उसके नवीन व्यवहार का क्या प्रभाव पड़ेगा।

चवालीस—जज के दरवाजे तक जाकर रमा के लौट आने से प्रकट होता है कि उसकी आत्मा अभी तक पूर्ण साहसी और दृढ़ नहीं हो सकी है। उसमें अभी थोड़ी कमजोरी बाकी है जिसके लिए उसे एक कड़वी डोज की जरूरत और है। अपनी इतनी कड़ी फटकार को व्यर्थ होते देख जालपा का पति के प्रति व्यवहार में क्या परिवर्तन होगा, पाठक इसे जानने को उत्सुक हैं।

पैंतालीस—जालपा-सी 'प्राउड लेडी' की भी 'कुछ मिजाज पुरसी करने की जरूरत होगी'—पुलिस अफसरों का यह भयप्रद संकेत रमा की दुर्बलता पर इतना बड़ा आघात है कि उससे फिर सर उठा सकने की आशा कोई कर ही नहीं सकता, यही इस परिच्छेद का संकेत है।

छियालीस—रमा-से विलासी युवक की सद्वृत्ति का हरण करने के लिए पुलिस ने 'कांचन' का प्रलोभन पहले दिया था, अब 'कामिनी-कादंब' का दूसरा प्रयोग करती है। और रमा वेश्या जोहरा के फंदे में बिलकुल फँस जाता है। ऐसी स्थिति में उसके उद्धार की रही-सही आशा भी जाती रहती है। जालपा की इस एक महीने में क्या दशा हुई होगी, यह जानने के लिए हम बहुत उत्सुक हैं।

सैंतालीस—जालपा की दयनीय स्थिति की एक झलक दिखाकर लेखक ने पाठक की उत्सुकता बढ़ाई है। पूर्व की प्राणप्रिय पत्नी की यह दशा देखकर रमा पुनः सचेत होता है। जोहरा के प्रेममय हृदय का परिचय लेखक ने सहृदयता से दिया है। संकेत है कि वेश्या भी मूलतः नारी होती हैं; नारी-प्रकृति की सभी विशेषताएँ उसमें वर्तमान रहती हैं; पर असद् वातावरण का प्रभाव धीरे धीरे इनका तेज हर लेता है। फिर भी इनका सर्वथा लोप नहीं होता। और सद्वृत्ति से युक्त प्रेमी के संसर्ग में आकर वेश्या की नारी प्रकृति के दो-एक गुण सजग हो ही जाते हैं। दरोगा का आगमन वेश्या-जीवन की छीना-झपटी पर प्रकाश डालता है।

अड़तालीस—उपन्यास का अंतिम महत्वपूर्ण दृश्य जिसमें जालपा की उज्ज्वल सेवावृत्ति और अद्भुत सहनशीलता की कहानी है। स्वार्थरहित परोपकार की महान साधना का चमत्कारपूर्ण प्रभाव

यहाँ दिखलाया गया है। विलासिनी जोहरा जब जालपा की निष्काम सेवा से अत्यंत प्रभावित होकर सीधा-सादा रहन सहन अपना लेती है, तब उसकी कष्ट-व्यथा सुनकर रमा का उत्तेजित हो जाना नितांत स्वाभाविक है। रमा के बयान बदलने का परिणाम जानने को हम उत्सुक हैं।

उनचास—दरोगा साहब की मूर्खता और परेशानी का जिक्र करने के लिए लेखक ने जोहरा को जो शरारत सुझाई है, उसी की रोचक कहानी यहाँ है। रमा के जज साहब के पास जाने का क्या फल पुलिसवालों को भुगतना पड़ेगा यह हम जानना चाहते हैं। जोहरा को एकांत में पाकर दरोगा के चित्त की चंचलता से लेखक की पैनी दृष्टि का परिचय मिलता है।

पचास—रमा ने साहस करके जज से सारी कहानी कह ही सुनाई। फलस्वरूप 'अँगरेजी न्याय के इतिहास में सर्वथा अभूतपूर्व घटना घटी; फिर से पेशी हुई और निरपराधी छोड़ दिए गए।

इक्यावन—रमा पर चलाए गए मुकदमें की कहानी। हृदयता पूर्वक विचार करके जज उसे बरी कर अपनी न्यायप्रियता का परिचय देता है।

बावन—अंतिम परंतु अत्यंत मार्मिक दृश्य जिसमें पारिवारिक सामाजिक क्रूरता की वेदी पर रतन और जोहरा, दो देवियाँ सरीखी नारियाँ बलिदान हो जाती हैं। शहर से हटाकर प्रयाग के समीपवर्ती गाँव में दयानाथ, रमा और देवीदीन के परिवारों को लेखक ने इस उद्देश्य-विशेष से एकत्र किया हैं कि नगर के भौतिक और पतितकारी संघर्ष से मुक्ति पाने के लिए गाँव ही एक मात्र स्थान है; क्योंकि सुख शांति के लिए इससे बढ़कर कोई अच्छी जगह हो ही नहीं सकती।

जोहरा-जैसी नारियाँ ऐसे आत्मबलिदान करके ही समाज में कुछ आदर पा सकती हैं ; लेखक का यही अंतिम संदेश है ।

उपन्यास की समस्याएँ

स्वास्थ्य के नाम पर स्त्रियों की स्वतंत्रता का प्रश्न उठा कर भारतीय समाज को पाश्चात्य जीवन के अनुकरण के लिए आज का शिक्षित समाज प्रेरित कर रहा है । निश्चय ही स्वास्थ्य-रक्षा की समस्या जीवन में सबसे महत्वपूर्ण है और खुले संसार में घूमने देने से यदि उनका स्वास्थ्य सुधर सकता है तो हमारे समाज को हठ छोड़ कर यह बात माननी ही होगी, चाहे अभी मानें या कुछ देर में, चाहे हँस कर माने या रोकर । वस्तुतः प्रश्न केवल खुले में घूमने का नहीं है । शिक्षित भारतीय युवतियाँ पाश्चात्य जीवन की वे सभी ऊपरी बातें अपनाना चाहती हैं जिनसे होने वाले अनेक लाभों की आकर्षक कहानी सात समुद्र पार करके उन तक पहुँची है । ऊँची शिक्षा वे चाहती हैं और हमारा अनुमान है कि प्रत्येक समझदार व्यक्ति इसका समर्थन करेगा ; परदा वे नहीं करना चाहतीं और हम समझते हैं कि इस कुप्रथा के प्रचलित होने का मूल कारण आज न रह जाने से इसकी कोई आवश्यकता भी नहीं रह गई ; मनचीते युवकों-युवतियों से मिलने-जुलने की पूरी स्वतंत्रता वे चाहती हैं और हमारी सम्मति में चरित्र और सतीत्व का मूल्य समझने वाली युव-

तियों को इसके लिए रोकना नितांत अनुचित है; अपने सौंदर्य को अधिक आकर्षक बनाने के लिए लिपस्टिक, पाउडर-जैसी चीजों को वे काम में लाना चाहती हैं और हमें विश्वास है कि इस लालसा की नैसर्गिकता का ध्यान करके पुरुष-वर्ग इसका विरोध नहीं, स्वागत ही करेगा; नाच-सिनेमा, सैर-सपाटा, खेल-कूद, ललित साहित्य का पठन-पाठन आदि के द्वारा वे अपना मनोरंजन करना चाहती हैं और हमें पूरी आशा है कि विश्राम की अवश्यकता समझने और एक-न-एक उपाय से अपना मनोरंजन करने वाला समाज इसके लिए भी स्त्रियों को सहर्ष अनुमति देना चाहेगा।

आज की युवतियों की ये इच्छाएँ सर्वथा स्वाभाविक और उचित होते हुए भी पूरी नहीं हो सकीं और न निकट भविष्य में इनके पूर्ण होने की आशा ही है। इसके कई कारण हैं। सबसे प्रधान बात यह है कि नगरों में साठ प्रतिशत से अधिक व्यक्ति मध्यम श्रेणी के हैं जिनकी आय इतनी नहीं है कि फैशन, सजावट, मनोरंजन आदि वे उन उपायों को अपना सकें जो विदेशों में अधिक सस्ते हुए भी भारत में अभी काफी मँहगे पड़ते हैं। पाश्चात्य देशों में भी युवतियों के सामने एक दिन यह समस्या आई थी। वहाँ स्वतः धन पैदा करने की अनुमति पाकर यह प्रश्न हल किया गया। भारत में भी इस या इसके मिलते जुलते किसी उपाय का सहारा जब तक नहीं लिया जाता, तब तक मध्यम वर्ग के परिवार में यदि पाश्चात्य रहन-सहन का आकर्षक और उत्तेजक ढंग अपना लिया गया तो स्त्री-पुरुष दोनों ही घाटे में रहेंगे। जालपा और रमानाथ का फैशन, रहन-सहन, मेल-मुलाकात, सैर-सपाटा, सभी कुछ उनकी हैसियत से बढ़ कर है। युवावस्था की उन्मादभरी अदूरदर्शिता ने उनकी आँखों पर और भी परदा डा

रखा है। रमानाथ का छल, उसकी डींगें, उसका संकोच आदि चरित्र के दोष युवती जालपा को भी अंधकार में रखते हैं। फलस्वरूप आगे पीछे की ओर से आँख मूँदे वे इतना आगे बढ़ जाते हैं कि जहाँ से लौटना रमा को असंभव प्रतीत होता है और अंत में वह घर से भाग खड़ा होता है।

इस प्रकार जालपा के आभूषण-प्रेम की एक वर्ग-सुलभ विशेषता को समस्या-रूप में अपनाकर प्रमचंद कथा का विकास करते हैं। बालकाल में यह आभूषण-प्रेम बालिका की सहज प्रकृति से संबंध रखता है; परंतु युवावस्था में अपने रूप को अधिक दीप्यमान दिखाने की लुभावनी लालसा विशेष प्रधान होकर सामने आती है। हाथ में पैसा है और दिल में जोश। खूब खुशखेली से काम किए जाते हैं। शृंगार के सारे सामान मौजूद हैं; नाच-रंग, मेला-तमाशा, सिनेमा-थियेटर, सब शुरू हो जाता है। शहर के नामी वकील की युवती पत्नी से मेल-जोल बढ़ता है; पार्टियाँ स्वीकारी और दी जाती हैं। यह सब किया जाता है ऊपर की उस आमदनी के सहारे जिसके बल पर कई आभूषण, घड़ी, साड़ी आदि वस्तुएँ उधार खरीदी गई थीं। ऋण न चुकने पर तकाजे होते हैं, पिता को पता लगने पर फटकार पड़ती है। फिर भी सब बात अपनी स्त्री से खोलकर कहते उसे संकोच होता है। अंत में रमानाथ के सामने एक ही रास्ता खुला दिखाई देता है; वह उसी पर चल देता है; और पीछे फिर कर देखने की उसकी चाह का गला लज्जा और भय ने इस तरह दबा रखा है कि लौटना तो दूर चार-पाँच महीने तक वह एक पत्र भी लिखने का साहस नहीं करता।

जालपा का जो आभूषण-प्रेम पारिवारिक जीवन के लिए

महान विपत्ति का कारण बनता है उसके लिए इस युवती को दोष देना युक्तिसंगत नहीं है। वस्तुतः गहनों की लिप्सा ने सर्वत्र नारि-समाज के हृदय में गहरी नींव का घर कर रखा है। 'गबन' के पहले ही परिच्छेद में मानकी चंद्रहार पाकर जीवन धन्य समझती है। बालिका जालपा अपनी माता से यही आभूषण-लिप्सा ग्रहण करती है। उसका परिचय रतन से होता है। उसे गहनों की इतनी चाह है कि तीन-तीन जोड़ी कंगनों के रहने पर भी जालपा के नए डिजायन पर रीझती है। रमा की माता रामेश्वरी का, नए आभूषण देखकर संयम खो देना उसके लिए स्वाभाविक ही समझा जायगा ; क्योंकि बेचारी का लगभग पाँच हजार का चढ़ावा गृहस्थी के खर्च में ही समाप्त हो चुका है। देवीदीन की बुढ़िया का 'पेट भी गहनों से नहीं भरता', एक न एक गहना बूढ़ी होने पर भी बनवाती ही रहती है। देवीदीन के शब्दों में, सारांश यह कि 'सब घरों का यही हाल है। जहाँ देखो—हाय गहने, हाय गहने ! गहने के पीछे जान दे दें, घर के आदमियों को भूखे मारें, घर की चीजें बेचे और कहाँ तक कहूँ अपनी आबरू तक बेंच दें। छोटे-बड़े, अमीर-गरीब सबको यही रोना लगा हुआ है—पृ० १४१—।

सत्य ही पारिवारिक जीवन की शांति का मीठा रस पान करके गहनों की विषैली लिप्सा जीवित रहती है। सास ससुर धनी हैं, पर मेरे गहने न बनवा कर मेरी उपेक्षा करते हैं, केवल इस बात का अनुमान करके आभूषणों के लिए लालायित जालपा उनका तिरस्कार करने को प्रस्तुत है, कहती है—वे मेरे हैं कौन; उनसे बताया ही क्यों जाय कि तुम्हारी (रमानाथ की) नौकरी कितने की लगी है। हाँ, गहने पाने पर स्त्रियाँ प्रसन्न भी होती हैं। जालपा में, दो गहने पाकर सेवा-भाव का उदय होता है। वह पति के आराम की चिंता करती है;

जिन चीजों के लिए रमा को घंटों भटकना पड़ता था, वे उसे तैयार मिलती हैं। वकील साहब की पत्नी रतन भी हार पाकर कृतज्ञता के भार से दब जाती है। पति उसका बूढ़ा है; उसकी आवश्यकताएँ बहुत सीमित हैं; वह उनके लिए अच्छी-अच्छी चीजें बनाती है। अस्तु।

कथा-विकास में सहायक इस उपन्यास की दो प्रधान समस्याएँ हैं। एक, स्त्रियों का आभूषण- प्रेम और दूसरी, मध्यम-श्रेणी के कम आय वाले नवदंपति की मनोरंजन के व्ययसाध्य साधनों में अनुभव-हीन संलग्नता, उनका फैशन और विलास-प्रियता। देश की वर्तमान स्थिति में इन दोनों सामाजिक समस्याओं का कम महत्व नही है। प्रथम अर्थात् आभूषण-प्रेम का संबंध स्त्रियों के प्राचीन भारतीय रहन-सहन से है और द्वितीय का प्रचार अँगरेजी शिक्षा-प्रसार के साथ सारे भारत में हो गया है। जालपा का आभूषण-प्रेम उसकी बाल-प्रकृति से संबंध रखता है; क्योंकि वह ऐसे ही वातावरण में पली है जहाँ गहने ही स्त्रियों के सर्वस्व हैं और पिता उसके खेलने के लिए खिलौने न लाकर गहने ही लाते हैं। गाँव के संकुचित क्षेत्र से बाहर निकल कर जब वह प्रयाग जैसे प्रतिष्ठित नगर में रतन-सी स्वच्छन्द और धनी नारी के सम्पर्क में आती है तब उसका पूर्व आभूषण-प्रेम, फैशन और विलासिता की अपेक्षाकृत अधिक विस्तृत और नवीन रुचि में, जिसका निकटतम सम्बन्ध अवस्था और शिक्षित संस्कृत समाज से है, परिणत हो जाता है। यह परिवर्तन नितांत स्वाभाविक और सामयिक है। आज की सी स्थिति बनी रहने पर मध्यम श्रेणी के परिवार का संबंध एक शताब्दी के लगभग चतुर्थांश तक इस समस्या से अवश्य बना रहेगा। इस दृष्टि से, हम समझते हैं कि 'गबन' की प्रधान समस्या काफी महत्वपूर्ण है।

मध्यम वर्ग की समस्या का एक दूसरा पहलू भी है । अपनी नियमित परंतु अपर्याप्त आय में कठिनता से परिवार का भरण-पोषण करके जीवन के दिन किसी प्रकार बिताना, स्वयं अच्छा खाने-पहनने की इच्छा तथा प्राणप्रिय संतान को, बहुत छोटी छोटी बातों के लिए जिसे मन मारना पड़ता है, खुशी देखने की स्वाभाविक लालसा लिए मर जाना, इस जीवन की करुण कहानी के ऐसे दृश्य हैं जो हम अपने परिवार में, चाहे हम कितने धनीमानी क्यों न हों, प्रतिदिन देखा करते हैं । सबसे बड़ी कठिनाई यह है कि इस वर्ग का घनिष्ट-तम संबंध उस उच्च वर्ग से है अधिकाँश अवसरों पर जिसके सदस्य विद्या, योग्यता, बुद्धि यहाँ तक कि चरित्र में भी हीन होने पर केवल धनी होने के नाते ही मध्यमवर्ग से ऊँचे समझे जाते हैं । कुछ तो इस संबंध की मर्यादा के लिए और कुछ अच्छा खाने-पहनने-सुख करने की स्वाभाविक मानवीय प्रकृति के फलस्वरूप अपनी चादर से अधिक पैर फैलाने पड़ते हैं । सामाजिक शिष्टाचार का ध्यान, जिसका निबाहना नैतिक दृष्टि से प्रायः आवश्यक हो जाता है और वित्त से बाहर हो जाने पर भी जिसका विरोध करने का साहस हमें नहीं होता, उनकी स्थिति को और भी दयनीय बना देता है । मध्यमवर्ग का मनुष्य यह सब कुछ समझ-बूझ कर भी नासमझ की तरह अपने को सुखी समझता है; 'चरै हरित तृन बलि पसु जैसे ।' प्रेमचंद ने इस उपन्यास में अपने ही बनाए गढ़े में इस वर्ग के प्रतिनिधि के गिरने की करुण कहानी कही है ।

मध्यवर्गीय समस्या संबंधी एक और ध्यान देने की है । आज से पचास वर्ष पूर्व थोड़ी, पर नियमित आय होने पर भी लोग संतुष्ट थे और इसलिए उनके जीवन में सुख का अभाव न था । रहन-सहन

इनका सीधा-सादा था और आवश्यकताएँ सीमित थीं । आडंबर से इन्हें चिढ़ थी और संगठित परिवार में प्रेम तथा सहयोग से जीवन के दिन ये बिताया करते थे । बुजुर्गों के देखते देखते उनके पुत्रों को अँग्रेजी शिक्षा ने नई रोशनी का बना दिया । नई चाल की लक्ष्यणीय विशेषता यह है कि निजी परिवार वालों के नाते को ठुकराकर परिचितों और मित्रों से संबंध जोड़ना, सहानुभूति दिखाना, प्रत्युत्तर की आशा करना और सैर-सपाटे, नाच-रंग, सिनेमा-थियेटर, चाय-पानी आदि के लिए निमंत्रित करना और होना अनिवार्य हो जाता है । परिवार के बड़े-बूढ़े भी, जो इन कामों को अपनी अर्थ-हीनता के कारण अनुपयुक्त समझते हैं, बड़े आदमियों से परिचय बढ़ जाने के लोभ से कभी कभी इनका समर्थन करते हैं— बहुधा पार्टियों में सम्मिलित हो जाने में भी संकोच नहीं करते— और कुछ ऐसे परिचयों से लाभ उठाने की आशा लेकर इनमें भाग लेते हैं । सारांश यह कि मध्यमवर्ग के रहन सहन में इस प्रकार के परिवर्तन का जो रूप हम व्यावहारिक जगत में देखते हैं उसी की छाया प्रस्तुत उपन्यास में मिलती है । रमा और जालपा का काशी के प्रतिष्ठित वकील की पत्नी रतन से हेलमेल बढ़ाना, इस प्रसिद्ध व्यक्ति से परिचय के लोभ से दयानाथ का पार्टी में सम्मिलित होना और सिफारिश कराने के उद्देश्य से रमेश बाबू का रमा को उत्साहित करना, आज के जीवन का कितना सच्चा चित्र है !

नवीन सभ्यता के संबंध में दो अन्य संकेत लेखक ने किए हैं । प्रथम तो यह कि फैशन और विलासिता को जीवन का चरम लक्ष्य समझने वाला पाश्चात्य रहन-सहन रतन जैसी उन नारियों के लिए है जिनका पति पर्याप्त धन कमा कर, मनमाने ढंग पर उड़ाने के लिए

उन्हें दे सकता है और जो बिना किसी निश्चत उद्देश्य या कार्य के ही सब कुछ खर्च करने के लिए तैयार रहती हैं। भारतवर्ष की वर्तमान परिस्थिति में हजार में सम्भवतः एक युवती को यह सौभाग्य प्राप्त होगा और शेष के लिए जीवन का यह रूप ईर्ष्या का ऐसा विषय बना रहेगा जिसकी प्राप्ति सम्भव नहीं है और जिसका अभाव जो कुछ है उसे भी सुख-शांति से भोगने के लिए उत्साहित न कर सकेगा।

प्रेमचन्द जी का दूसरा संकेत भी इतना ही स्पष्ट है। घर के संकुचित्र क्षेत्र से बाहर आकर पुरुष मात्र से निसंकोच बात करने और स्थिति समझ कर अवसरोचित काम करने का साहस आज की युवतियों को आधुनिक शिक्षा अथवा शिक्षित युवतियों का अनुकरण करने की स्वच्छन्दता ने ही दिया है। रमा के भाग जाने पर जालपा का आफिस जाना, सब बात समझकर चौक में आभूषण बेचना और आफिस का रुपया जमा कर देना आदि ऐसी बातें हैं जो घर के दरबे में बंद रहने वाली युवती से नहीं बन सकतीं।

हिन्दू-समाज की वैवाहिक समस्याओं पर भी लेखक ने परोक्ष रूप से अपने विचार प्रकट किए हैं। निर्धन परंतु शिक्षित रमानाथ की माता जागेश्वरी सोंचती है—कोई यहाँ क्यों आने लगा? न धन है, न जायदाद। लड़के पर कौन रीझता है। लोग तो धन देखते हैं—पृष्ठ ७—। ऐसे विवाह में भाग्य पर विश्वास अधिक रहता है। 'प्रतिज्ञा' में प्रेमा की भाभी ऐसी स्थिति के विवाह की बुराई करती है। पढ़े-लिखे वर की खोज में सभी माता पिता रहते हैं; परंतु जालपा की सहेली का पति, जो एम. ए. पास है, सदा रोगी रहता है। रोगी पति से स्त्री कैसे प्रसन्न रहेगी? शिक्षा और धन के संबंध की घनिष्टता से प्रायः

आचरण पर आँच आती है। जालपा की दूसरी सखी का पति, जो विद्वान भी है और धनी भी, वेश्यागामी है। रतन के मामा ने बूढ़े वकील के साथ उसको ब्याहा है। धन की रतन को कमी नहीं है। पति महोदय काशी के सबसे बड़े वकील हैं; इसलिए सम्मान और प्रतिष्ठा की बात है। परंतु, उसके जीवन का भविष्य नितांत अंधकारमय है, शून्य है; जालपा-जैसी उस स्त्री से भी वह गई बीती है जिसका पति केवल तीस रुपया मासिक पाता है, घर से भाग गया है, घर में जिसका कोई आदर नहीं है और जिसके परिवार में धन-संपत्ति कुछ भी नहीं है। जालपा अपने पति से संतुष्ट है। वह मामूली पढ़ा-लिखा है, बहुत मामूली घर है। सब काम-काज अपने हाथ से करना पड़ता है। यह सब कुछ होते हुए भी जालपा के संतोष का कारण यह है कि रमानाथ पत्नी से प्रेम करता है, सच्चरित्र है और स्वस्थ है। धन और विद्या न देख कर पुत्री के वर में केवल स्वास्थ्य और चरित्र ही देखा जाय, रमा और जालपा के वैवाहिक जीवन परिचय से लेखक का यह संकेत मान सकते हैं।

अब आर्थिक समस्या को लीजिए। भारतीय समाज की वर्तमान अवस्था में सम्पत्ति-वितरण-सम्बंधी जो विषमता दिखाई देती है उस का एक दुखद परिणाम परोक्ष रूप से इस उपन्यास में दिखाया गया है। जालपा एक सम्मिलित परवार की वधू है जिसके पति की आमदनी थोड़ी है और जिसको खाने-पहनने की वे सभी सुविधाएँ और सुख प्राप्त नहीं हैं युवती पत्नी और युवक पति को प्रमुदित करने के लिए, विलास और आनंद के स्तर मे उतर कर जो आवश्यकता की सीमा में आ जाते हैं। दूसरा घर वकील साहब का है जहाँ धन आने के सभी द्वार खुले हैं और युवती पत्नी रतन का सब कुछ

इच्छानुसार खर्च करने की पूरी स्वतंत्रता है संपत्ति के अभाव और आधिक्य दोनों का दुष्परिणाम उपन्यास में दिखाई देता है, सुखों की ओर से असंतुष्ठ और संपत्ति का अभाव पति-सुख से वंचित कर देता है। और रतन के लिए पति की मृत्यु के पश्चात संपत्ति की अधिकता परिवार वालों को ऐसा भयानक जंतु बना देती है जो पति-शोक से पीड़ित विधवा के सुख-साधनों को जीवित ही हड़प कर जाने में जरा भी संकोच नहीं करता।

सामाजिक जीवन में आज एक खटकने वाली बात यह है कि अपने को सुखी, संतुष्ठ या सम्मान-योग्य वे तब समझते हैं जब विदेशीपन की नकल निभा ले जाने में सफल हो जायँ। कपड़े अच्छे पहनने का शौक होने पर हमें कोट-पतलून, टाइ-नेकटाई चाहिए, अपने साज-शृंगार के लिए है जलीन, वैसलीन, क्रीम स्नो और न जाने क्या क्या चाहिए तथा घर के लिए मेज-कुर्सी-कोच-टी सेट जैसी चीजों की जरूरत होती है। काशी के प्रसिद्ध वकील साहब-से बड़े आदमी से भेंट होने का अवसर आने पर दयानाथ और रमेश बाबू तीनो मकान को अँगरेजी ढंग से ही सजाने की बात सोचते, तय करते हैं और इस संबंध में लेखक का सुन्दर व्यंग है कि यह सारा हौसला और शौक पूरा किया जाता है माँगे के सामान के बल पर। किराए के कपड़े पहन कर मर्यादा-निर्माण और निर्वाह का यह ढंग कितना हास्यास्पद है! और फिर भी हमारे समाज का मध्यम वर्ग इसे सहर्ष अपना रहा है, समझता है कि इसके बिना हमारा जीना असम्भव है, हमारा जीवन खोखला है, व्यर्थ है।

उपन्यास के तत्व

(क) कथा-विकास—प्रस्तुत उपन्यास की कथा सीधी-सादी है ; उसका जन्म सरल ढंग से ऐसी सतर्कता से हुआ है कि कोई अनावश्यक अथवा अप्रासांगिक स्थल उसके प्रवाह में बाधक नहीं होता। स्थल स्थल पर प्रत्येक घटना की यथार्थता स्थिति और पात्र-प्रवृति की मनोवैज्ञानिक व्याख्या द्वारा लेखक सिद्ध करता चलता है।

नाटक के दृश्यों की तरह उपन्यास क प्रारंभिक अध्याय छोटे हों; उनका कलेवर धीरे धीरे बढ़ता जाय और मध्यभाग तक पहुँचने के पश्चात् अलक्षित रूप से क्रमशः घटने लगे—कला की दृष्टि से संभवतः यही क्रम पाठकों को रुचिकर होगा। स्थल विशेष पर प्रसंगानुरूप इस नियम में परिवर्तन करने के लिए लेखक स्वतंत्र है परंतु खटकनेवाला अंतर कहीं नहीं होना चाहिए। 'गबन' के प्रथम चार अध्याय कथा की प्रस्तावना-रूप हैं। इसलिए ये बहुत छोटे हैं—सब दो-सवा दो पेज के। पाँचवें अध्याय से कथा का वास्तविक आरम्भ समझना चाहिए और यह लगभग छः पेज का है। इसके पश्चात अध्यायों का विस्तार और क्रम बिल्कुल अनिश्चित नही है। कथा-विकास के बीच बीच जो विश्राम-स्थल हैं, जहाँ से उसकी गति परिवर्तित होती है, वहाँ प्रेमचन्दजी ने बड़े-बड़े अध्याय दिए हैं और ऐसे दो अध्यायों के बीच में, पूर्व प्रसंगों को साथ लाने के लिए कई छोटे छोटे अध्यायों का क्रम रखा है जैसे रेल की लम्बी लाइन पर दो बड़े जंकशनों के बीच कई मामूली स्टेशन पड़ते रहते हैं। पन्द्रह,

अठारह, इक्कीस, छब्बीस, चौंतीस संख्यक अध्यायों की पृष्ठ संख्या क्रमशः १७, १३ १६, १२ और १३ है। इनके बीच में जो अध्याय कथा-विकास की अन्य धाराओं को साथ लाने के लिए लिखे गए हैं उनकी पृष्ठ संख्या कम से कम ४ और अधिक से अधिक ८ है। स्पष्ट है कि अध्यायों का संकोचन और विस्तार लेखक ने उद्देश्य-विशेष से, कथा विकास की स्थितियों से परिचित कराने के लिए, किया है।

(ख) उत्सुकता-वृद्धि—कथा का क्रमशः विकास करके ऐसे स्थल पर ले आगे आना कि पाठक की उत्सुकता बहुत बढ़ जाय, साँस रोक कर वह का हाल जानने को विकल हो जाय, पर लेखक ऐसे ही स्थल पर अध्याय समाप्त करके नए परिच्छेद में कथा का अन्य नया-पुराना सूत्र पकड़ कर कोई नई बात कहना चाहे अथवा पिछला अधूरा प्रसंग पूरा करे—उत्सुकता-वृद्धि का यह ढंग, जो पुराने ढर्रे के ऐयारी जासूसी उपन्यासों में देखने को मिलता है, प्रेमचंदजी ने नहीं अपनाया-उनके कथा-प्रवाह की अनेक धाराएँ हैं और सभी अंत की ओर धीरे-धीरे बढ़ रही हैं। ऊबड़-खाबड़ भूमि में लेखक एक धारा के साथ बराबर रहता है और दूसरी धारा के साथ चलने के लिए पीछे तभी पलटता है जब पहली ऐसी समतल भूमि पर पहुँच जाती है जहाँ से काफी दूर तक कोई नई बात होने की संभावना नहीं रहती। रमा घर से भागता है तो लेखक उसके साथ हो लेता है जैसे वह यह न चाहता हो कि पाठक, रमा का क्या हुआ? उसने कहाँ कहाँ ठोकरें खाईं? पैसा न होने से उसपर क्या आपत्तियां आई होंगी? आदि प्रश्नों के चक्कर में पड़ा रहे। इसलिए रमा का साथ छोड़ कर लेखक तभी लौटता है जब उसे देवीदीन के आश्रय में नींद आ जाती है और यह भी

निश्चित होजाता है कि उसी के घर जा कर वह कुछ दिन रहेगा। 'देवीदीन बार-बार उसे स्नेह भरी आँखों से देखता है मानों उसका पुत्र कहीं परदेश से लौटा हो'—यह अंतिम वाक्य पढ़कर पाठक रमा की ओर से बिलकुल निश्चिंत हो जाता है और पाठक को संतोष की साँस लेते देख कर लेखक तभी जालपा को साथ लेने पीछे चल देता है।

वस्तुतः पाठक की उत्सुकता-वृद्धि का प्रबंध कर लेना उपन्यासकार की सफलता का प्रधान साधन हो इसके लिए कई प्रकार के उपायों का अवलंब लेखक को लेना पड़ता है। कभी तो वह कथा की भावी गति-विधि के संबंध में अनिश्चयात्मक संकेत करके अपना उद्देश्य पूरा करता है और कभी कथानक का रोचक ढंग से विकास करके। प्रथम साधन अपने मूलरूप में उपन्यास के अन्य तत्वों से स्वतंत्र है और दूसरा पात्रों की प्रकृति और परिस्थिति की परिवर्तन शीलता से संबंधित। इस तरह दूसरे साधन के प्रायः तीन रूप देखने में आते हैं—एक, पात्रों की स्वाभाविक विचित्रता-जनित उत्सुकता-वर्धक साधन; दूसरा, परिस्थिति की परिवर्तनशीलता संबंधित साधन, तीसरा, सम्मिलित साधन। प्रेमचंदजी के उपन्यासों में पाठक की उत्सुकता बढ़ाने के लिए सभी साधन अपनाए गए हैं।

कथानक की भावी गति-विधि के संबंध में अनिश्चात्मक संकेत करके उत्सुकता बढ़ाने का एक उदाहरण दूसरे परिच्छेद में ही है। जालपा चन्द्रहार चाहती है। उसके पिता की आर्थिक स्थिति ऐसी है नहीं कि हार बनवा सकें और माता यह कह कर कि चन्द्रहार तेरी ससुराल से आयेगा, जालपा को बहला देती है। इसके पहले बिसाती भी संकेत कर गया है—चार दिन में बिटिया को असली चन्द्रहार

मिल जायगा—पृ० ४—। पाठक इन वाक्यों को सुनकर सोंचता है कि क्या मध्यम वर्ग के इस परिवार का सम्बन्ध ऐसे धनी घर से हो हो सकेगा जहाँ से चन्द्रहार आ सके? और तभी जालपा मन में सोचती है—ससुराल से चन्द्रहार न आया तो? —पृ०५—। पाठक इन विचारों से अनिश्चित-सा होकर सोचता है—देखें क्या होता है?

एक उदाहरण और। रतन रोगी और वृद्ध पति का कलकत्ते में इलाज कराना चाहती है और उसका निश्चय है—जब तक बीमारी की जड़ न टूट जायगी, न आऊँगी। रतन का यह निश्चय पाठक को आकर्षित करता है परन्तु लेखक उन्हें अंधकार में नहीं रखना चाहता। इसीलिए लिखता है—विधि अन्तरिक्ष में बैठी हँस रही थी! जिस बीमारी की जड़ जवानी में न टूटी, बुढ़ापे में क्या टूटेगी? भविष्य में घटने वाली किसी महत्वपूर्ण घटना के सम्बन्ध में इस प्रकार के संकेत निश्चय ही अनुपयुक्त नहीं समझे जायँगे।

की उत्सुकता बढ़ाने के लिए उपन्यास-लेखक कभी-कभी अपने पात्रों को ऐसी जटिल स्थिति में डालता है कि समस्या सुलझाने पाठक में वे विशेष दत्तचित्त हों और उनकी कार्य-सम्पादन-प्रणाली चरित्र पर प्रकाश डाल सके। पात्र-पात्रियों से इस प्रकार स्थिति की जटिलता का सामना कराना इसलिए अस्वाभाविक नहीं समझा जा सकता कि जीवन में सभी के सामने ऐसे अवसर आते हैं जब हम किंकर्तव्य-विमूढ़ हो जाते हैं। ध्यान देने की बात यह है कि ऐसी स्थिति में पात्र-पात्री वैसे ही वचन कहें। वैसा ही आचरण बनाए रहें और वैसे ही कार्य करें जैसा कथन, आचरण और कार्य उस श्रेणी, स्वभाव और संस्कार वाले व्यक्ति का नित्यप्रति देखा जाता है। यद्यपि यह सत्य है कि विशेष स्थिति में मनुष्य का व्यवहार अपनी प्रकृति के प्रतिकूल

अथवा पूर्वाचरण के विरुद्ध हो जाता है तथापि इस परिवर्तन का सबल कारण अवश्य होना चाहिए।

प्रेमचन्द जी उपन्यास में पात्र-पात्रियों के सामने एक न एक नई समस्या रखते ही चलते हैं; कभी-कभी तो एक समस्या से पात्र-पात्री मुक्त भी नहीं हो पाते कि दूसरी अपेक्षाकृत अधिक जटिल होकर सामने आ जाती है। जीवन में कुछ समस्याएँ मानवी होती हैं और कुछ दैवी। द्वितीय वर्ग अर्थात दैव-प्रदत्त समस्याओं के मूल में मनुष्य का हाथ नहीं रहता; इसलिए इन्हें दैवी प्रकोप, विधि-विडम्बना अथवा निजी दुर्भाग्य कहकर मनुष्य संतोष करता है। लेखक नवीन समस्याओं की सृष्टि के लिए दैव का सहारा ले तो उपन्यास में कोई चमत्कार नही रह जाता; क्योंकि उस दशा में तो यह व्यक्तिगत दुर्भाग्य की ऐसी नीरस कहानी होगी जिससे न तो मानव-चरित्र-विकास पर ही कोई प्रकाश पड़ेगा और न जिससे सब किसी को रुचि ही हो सकती है।

प्रेमचन्दजी के पात्र-पात्रियों के सामने जो समस्याएँ आती हैं, वे सभी उनके स्वभाव, कर्म, संस्कार, व्यवहार अथवा वचन का फल हैं। 'गबन' ऐसा उपन्यास है जिसमें नायक को हर समय एक न एक समस्या चिंतित किए रहती है; परन्तु सभी की सृष्टि का मूल कारण वह स्वयं है। रमा की कुछ भूलें ऐसी अवश्य है कि पाठक बार-बार उस पर झुँझला पड़ता है; परन्तु अवसर पर उसकी विवशता की विवेचना लेखक ने इस तरह की है, भूल का कारण इस ढंग से बताया है कि पाठक की सहानुभूति बराबर उसके साथ बनी रहती है। सारांश यह है कि दुर्बल प्रकृति का यह नायक अपने प्रत्येक कार्य और निश्चय से पाठकों की उत्सुकता ही बढ़ाता है।

(ग) पात्र—'गबन' में उच्च, मध्य और निम्न तीनों वर्गों के पात्रों का सामाजिक जीवन चित्रित है और सभी की समस्या, वर्तमान स्थिति वर्गगत और निजी विशेषताएँ दिखलाई गई हैं। वकील साहब और रतन उच्च वर्ग के प्रतिनिधि हैं; धन जिनके पास खूब है; पर जीवनमें सुख नहीं मिलता। इस वर्ग का ईश्वर, और धर्म पर विश्वास भी नहीं-सा है। अपनी प्रसन्नता खरीदने के लिए उसके पास धन है जिसे वह पानी की तरह बहा सकता है। धनियों के सम्मिलित परिवार में विधवा की स्थिति का परिचय करने के लिए नए पात्र मणिशंकर से लेखक ने हमारी भेंट कराई है। रतन की अकाल मृत्यु का मूल कारण भतीजे मणिशंकर के व्यवहार की अर्थ-लोलुपता-जनित कुटिलता मानी जा सकती है।

खटिक देवीदीन और जग्गो निम्न वर्ग के पात्र हैं। इसी वर्ग के पात्र आज परिश्रमी हैं, स्वस्थ हैं, सीधे-सादे पूर्व संस्कार युक्त हैं और ठोस भी हैं। जग्गो दिन में सोलह घंटे परिश्रम करती है और इसी लिए फटे कपड़ों पर सोने वाले देवीदीन की मालियत पंद्रह-बीस हजार की है। धर्म-कर्म पर इस वर्ग की आस्था है; तीर्थ-व्रत में इसे विश्वास है और दया-ममता की स्वाभाविक वृत्तियों का लोप भी इस वर्ग के हृदय से नहीं हुआ है। उच्च वर्ग वाला मणिशंकर जहाँ अपनी चाची को उसीका धन हड़प कर भिखारिणी बना देता है, वहाँ देवीदीन और जग्गो अपरिचित रमा को महीनों अपने घर रखते हैं; उसे छुड़ाने के लिए हजार-पाँच सौ खर्च करने को सहर्ष तैयार हैं। अपनी ही नहीं, देश की चिन्ता भी इन्हें है और इनमें से कुछ को अपने सिद्धांत इतने प्रिय हैं कि 'विदेशी दियासलाई भी इनके यहाँ नहीं आती।' दिन रात हजारों तरह के आदमियों से सामना होने के

कारण इनका सांसारिक अनुभव खूब बढ़ा चढ़ा है और सेठ करौड़ी-मल-जैसों की नस-नस की पहचान इन्हें है।

देश में मध्यम वर्ग वालो की संख्या अधिक रहती है। इसलिए मध्यम वर्ग के दयानाथ के परिवार की कथा से ही पुस्तक का अधिकांश भरा है। हमारा मध्यमवर्ग आज सभी बातों में खोखला है। शिक्षा, धन, स्वास्थ्य, सुख सभी से यह वंचित है; केवल पिसते रहना इस वर्ग के पात्रों के भाग्य में बदा है। परिवार की स्थिति अच्छी न होने के कारण ही रमा को अधूरी शिक्षा मिलती है। धन न होने की शिकायत दयानाथ को जीवन भर रहती है। पुष्टिकारक भोजन न मिलने और चिंताओं से घिरे रहने के कारण मध्यम वर्ग के पात्र स्वथ्य और सुखी नहीं होते। अपनी अर्थिक स्थिति सुधारने के लिए इन्हें रिश्वत लेनी पड़ती है; परंतु भारतीय संस्कारों के मध्य में पलने के कारण छोटी-से-छोटी दुर्घटना की आशंका इन्हें भयभीत कर देती है। निम्न वर्ग वालों से ये अपने को ऊँचा समझते हैं और गोपीनाथ कलकत्ते जाकर देवीदीन के नाम के साथ 'खटिक' सुन कर चौंक पड़ता है; परंतु बड़ों की अंगरेजित की नकल किराए के सामान के बल पर करके अपनी दयनीय स्थिति की वास्तविकता छिपाते इस वर्ग के पात्रों को लज्जा नहीं आती और मजा यह है कि रमेश और दयानाथ जैसे पात्रों ने अंग्रेजी कमरे देखे भी नहीं हैं। हाथ से काम करने में मध्य वर्ग वाले आज शरमाने लगे हैं और रामेश्वरी अपने रोगी पति के लिए पाव भर आटा भी हाथ से पीसना स्वीकारने में सकुचती है।

वेश्याओं की गिनती समाज के बाहर है। इस लिए जोहरा को हम उक्त तीनों वर्गों में नहीं रख सकते। ऐसी स्त्रियों का सम्मान लुक-

छिपकर किया जाता है; पर समाज के सामने वे अपमानित और तिरस्कृत समझी जाती है; भले घरों में उनके प्रवेश का निषेध है, यद्यपि हमारा धनी वर्ग कृष्ण-जन्म जैसे शुभ अवसरों पर उनका सदैव स्वागत करने को सहर्ष तत्पर रहता है। जोहरा में अपनी सम व्यवसायिकों-से दोष भले ही हों; परंतु प्रेमचन्दजी ने उसका चित्रण इस ढंग से किया है कि उसके सौजन्य और निष्कपट व्यवहार से प्रभावित होकर पाठक भी रमानाथ के साथ कहना चाहता है—मैं इसे अपना सौभाग्य समझता हूँ कि मुझे उस तरफ से प्रकाश मिला जिधर से औरों को अन्धकार मिलता है। विष में मुझे सुधा प्राप्त हो गई है।

(घ) भाषा—उर्दू के जो लेखक हिंदी में आ जाते हैं प्रायः उनकी भाषा में एक दोष यह रहता है कि अपने साथ उर्दू-भाषा-पन ले आते हैं जो हिन्दी में खपता नहीं, खटकता रहता है। ऐसा ही कुछ प्रभाव पद्मसिंह शर्मा की भाषा पर पड़ा है। परन्तु प्रेमजन्दजी ने उर्दू की उन्हीं बातों को अपनाया जिनकी हिन्दी में कमी थी या जो हिन्दी में प्रायः खटक नहीं सकती थीं। साथ ही उन्होंने हिन्दी की प्रकृति का ध्यान रक्खा और उसकी विशेषताएँ भी वे बराबर अपनाते रहे। भाषा-संबंधी प्रेमचन्द का यही आदर्श कहा जा सकता है। इसे अपनाने का फल यह हुआ कि उपन्यास-क्षेत्र में भाषा-सम्बन्धी जो दोष बाबू देवकीनन्दन खत्री की भाषा में रह गए थे उनका प्रेमचन्द जी संस्कार कर सके और जनता के सामने उसका साहित्यिक तथा परिमार्जित रूप भी रख सके जिसको, अपनी रुचि, आदर्श, उद्देश्य, संस्कार आदि के कारण थोड़ा-बहुत परिवर्तिन करके, उनके बाद के अन्य लेखकों ने सहर्ष अपना लिया।

भाषा की दृष्टिसे उनकी शैली के तीन रूप मिलते हैं !

(१) उर्दू-प्रधान भाषा जिसका प्रयोग प्रायः मुसलमान पात्र के मुख से, या मुसलमानों सेबात करते समय किया गया है। इस कानमूना—

मैं खुद अपने दौराने मुलाजिमत में उनकी नकल व हरकत की रिपोर्ट लिखा करता था। मगर मेरे खियाल में किसी जिम्मेदार हिन्दू ने गवर्नमेंट के इस तर्जेअमल की मुखालिफत नहीं की हालाँकि मेरी निगाह में सरका, वल्व वगैरह इतने मकरुह फेल नहीं हैं जितनी असमत फरोशी ।

प्रायः इसी प्रकार की भाषा का प्रयोग 'सेवासदन' में सैयद तेग अली और हकीम शोहरतखाँ तथा 'प्रेमाश्रम' में सैयद इर्फान अली और कहीं-कहीं सैयद ईजाद हुसेन से कराया गया है। इस संबंध में हम केवल इतना कहना चाहते हैं कि पात्र के अनुसार कथोपकथन की भाषा में थोड़ा-बहुत अन्तर कर देना तो स्वाभाविक है, परन्तु इतना नहीं, और इसी से भाषा का यह रूप उनकी भाषा-शैली में एक दोष ही समझा गया है।

(२)प्रेमचंद की भाषा का दूसरा रूप वह है जिसमें संस्कृत शब्दों की प्रधानता है। ऐसी भाषा का प्रयोग प्रायः उन्हीं स्थलों पर किया गया है जहाँ कवियों की तरह भावमग्न होकर लेखक अपने विचार प्रकट करता है। उदाहरण के लिए कवित्व-पूर्ण शैली का यह स्थल देखिए—

• श्यामल क्षिति के गर्भ से निकलने वाली बाल-ज्योति की भाँति अमरकांत को अपने अंतःकरण की सारी शुद्धता, सारी कलुषता के भीतर, एक प्रकाश-निकला हुआ जान पड़ा, जिसने उसके जीवन को रजत-शोभा प्रदान कर दी, दीपकों के प्रकाश में, संगीत के स्वर में

गगन की तारिकाओं में, उसी शिशु की छवि थी उसी का माधुर्य था, उसी का नृत्य था। कर्मभूमि, पृ० ६४

शुद्ध साहित्यिकता की दृष्टि से गद्य-काव्य का-सा अनन्द देने वाले ऐसे स्थल पाठकों को बहुत प्रिय हैं।

(३) उनकी भाषा का तीसरा रूप वह है जिसमें उक्त दोनों शैलियों का सामंजस्य है। यही उनकी शैली का वास्तविक रूप है और इसी में उन्हों ने अधिकांश ग्रन्थ लिखे हैं। विषय और पात्र के अनुसार भाषा के इस रूप में परिवर्तन हो जाता है, और कला की दृष्टि से यह वांछनीय भी है, पर इस प्रकार की भाषा में सर्वत्र स्वभाविकता है और प्रवाह भी। एक छोटा-सा उदाहरण देखिए—

गाड़ी चलदी, उस वक्त रमा को अपनी दशा पर रोना आ गया। हाय, न जाने उसे कभी लौटना नसीब भी होगा या नहीं। फिर यह सुख के दिन कहाँ मिलेंगे! ये दिन तो गए, हमेशा के लिए। इसी तरह सारी दुनिया से मुँह छिपाए, वह एक दिन मर जायगा। कोई उसकी लाश पर आँसू बहाने वाला भी न होगा। घरवाले भी रो-धोकर चुप हो रहेंगे। गबन, पृ० ११५

प्रेमचन्द जी की भाषा का यह प्रतिनिधि स्वरूप उनकी सभी रचनाओं में अधिकता से मिलता है। यह भाषा वास्तव में बोलचाल की भाषा का वह संस्कृत रूप है जिसमें देवीदीन जैसे अशिक्षित और अपढ़ भारतवासी अपने विचार प्रकट करते हैं। इस भाषा को लेखक ने बड़े संयम से लिखा है; यह सर्वत्र ग्रामीणों की तरह सीधी-सादी बनावटी-पन से अछूती है। संस्कृत या अरबी-फारसी की तत्समता का प्रभाव इस पर प्रायः नहीं पड़ता। अलंकारों के प्रयोग से इसमें

प्रायः मिलता है; पर कहने वाले की लियाकत या पंडिताई दिखाने के लिए नहीं, बल्कि कही हुई बात को अच्छी तरह समझाने के लिए। चलते मुहाविरे उसमें अपनी चटक मटक तो नहीं दिखाते; पर ठीक ठीक अर्थ समझाने के लिए मौके पर आ जाते हैं। देवीदीन की भाषा का यह नमूना कितना सुन्दर है—

जिस देश में रहते हैं, जिसका अन्न जल खाते हैं, उसके लिए इतना भी न करें तो जीने को धिक्कार है। दो जवान बेटे इसी मुदेसी की भेंट कर चुका हूँ। भैया ऐसे ऐसे पट्ठे थे कि तुम से क्या कहें! दोनो बिदेसी कपड़े की दूकान पर तैनात थे। क्या मजाल थी कि कोई गाहक दूकान पर आ जाय। हाथ जोड़कर, घिघियाकर, धमकाकर, लजवाकर सबको फेर लेते थे। बजाजे में सियार लोटने लगे। सबों ने जाकर कमिश्नर से फरियाद की। सुन कर आग हो गया। बीस फौजी गोरे भेजे कि अभी जाकर बाजार से पहरे उठा दो। गोरों ने दोनों भाइयों से कहा—यहाँ से चले जाव; मुदा वह अपनी जगह से जौ भर न हिले।

भीड़ लग गई। गोरे उन पर घोड़े चढ़ा लाते थे; पर दोनों चट्टान की तरह डटे खड़े थे। आखिर जब इस तरह कुछ बस न चला तो सबों ने डंडों से पाटना शुरू किया। दोनों बीर डंडे खाते थे; पर जगह से न हिलते थे। जब बड़ा भाई गिर पड़ा तो छोटा उसकी आ खड़ा हुआ। अगर डंडे सँभाल लेते तो भैया, उन बीसों को मार भगाते; लेकिन हाथ उठाना तो बड़ी बात है, सिर तक न उठाया। अंत में छोटा भी वहीं गिर पड़ा। दोनों को लोगों ने उठाकर अस्पताल भेजा। उसी रात को दोनों सिधार गए। तुम्हारे चरन छूकर कहता हूँ, भैया, उस बखत ऐसा जान पड़ता था कि मेरी छाती गजभर की

हो गई है, पाँव जमीन पर न पड़ते थे। यही उमंग आती थी कि भगवान ने औरों को पहले न उठा लिया होता तो इस समय उन्हें भी भेज देता। जब अर्थी चली तो एक लाख आदमी साथ थे। बेटों को सौंप कर मैं सीधे बाजाजे पहुँचा और उसी जगह खड़ा हुआ, जहाँ दोनों वीरों की लहास गिरी थी। गाहक के नाम चिड़िये का पूत तक न दिखाई दिया। आठ दिन वहाँ से टला तक नहीं। बस, भोर के समय आध घंटे के लिए घर आता था और नहा-धोकर कुछ जल-पान करके चला जाता था। नवें दिन दूकानदारों ने कसम खाई कि विलायती कपड़े अब न मँगायँगे। तब पहरे उठा लिए गए। तब से बिदेसी दियासलाई तक घर में नहीं लाया—गबन पृ० १७६—।

'गबन' में अन्य उपन्यासों की तरह पढ़े लिखे पात्रों ने इन अँगरेजी शब्दों का प्रयोग किया है—डिगरी, लॉटरी, बोर्ड, हेडक्लर्क, सारजंट, चार्ज, रजिस्टर, डिजायन, पार्टी, इंट्रोडक्शन, नान्सेंस, एप्रूवर, आल्टरनेटिव, डिसमिस, इंक्वायरी, लेशन, डायरेक्टर, प्राउड लेडी, सर्टीफिकेट, लेडी टीचर, ब्लंडर, डाऊट, बंगलिंग। स्वयं लेखक ने केस (डिब्बा), स्कीम, असिस्टेंट जैसे अँगरेजी शब्दों का निसंकोच प्रयोग किया है रप इनके बहुवचन हिन्दी व्याकरण के अनुसार ही बनाए हैं; जैसे लेडियों, टीचरों, डिजाइनों। अशिक्षित देवीदीन सुविधानुसार विकृत करके अँगरेजी शब्दों का प्रयोग करता है—सुपरीडंट, इसपिट्टर, जेहल। अँगरेजियत और सोहबती, प्रेमचन्द जी के गढ़े हुए शब्द है। भागड़, टोनहे, जट्ट जट्टूपन, समाई, टिचन, सिरकी, बिसूरना, अँतरे, रगेदूँ, अँकवार, औसान, चपरगट्टू मालियत जैसे घरेलू शब्द 'गबन' में यत्रतत्र पाए जाते हैं। अलल्ले-तलल्ले, दगल-फसल, चिट्ठी-चपाती, अतर फुलेल, चल-चलाव, दौरी-

दूकान, खत पत्तर, साथी-सोहबती—शब्दों के ये जोड़े प्रेमचंद जी की भाषा को विशेष बल प्रदान करते हैं। हाँ, अताई (पृ० १७६), नहूसत (पृ० १८८). उटक्करलेस (पृ० २८८), मुखिल (पृ० २८६) जैसे अप्रचलित शब्द कहीं कहीं खटकते भी हैं। म्युनिसिपल बोर्ड के हेड क्लर्क रमेश बाबू का 'रपट' और जागेश्वरी का 'मकदूर' कहना भी उचित नहीं जान पड़ता ।

पात्र के अनुसार उनकी भाषा परिवर्तित होती रहती है। जालपा से कहार त्योरियाँ बदल कर कहता है—तो का चार हाथ-गोड़ कै लेई, कामैं से तो गया रहिन रहा। बाबू मेम साहब के तीर रुपैया लेवै का भेजिन रहा—पृ० ११५--देवीदीन खटिक भी लहास, सूराज (स्वराज्य), सिपारिस, रुसवत (रिश्वत) आदि का प्रयोग करता है। पुलिस के बंगाली डिप्टी की भाषा का नमूना यह है—आप को वही गवाही देना होगा जो आप दिया। अगर तुम कुछ गड़बड़ करेगा, कुछ भी गोलमाल किया, तो हम तुम्हारे साथ दोसरा बर्ताव करेगा··· ··· तोम पुलोस को धोखा देना दिल्लगी समझता है। अभी दो गवाह देकर साबित कर सकता है कि तुम राजद्रोह का बात कर रहा था। बस, चला जायगा सात साल के लिए। चक्की पीसते पीसते हाथ में घट्टा पड़ जायगा।यह चिकना चिकना गाल नहीं रहेगा—०पृ २६६—।

(ङ) शैली—आरम्भ में प्रेमचन्द जी उर्दू में लिखते थे और वहाँ उनकी गिनती प्रसिद्ध लेखकों में थी। हिन्दी में आने पर उर्दू शैली का उनकी लेखन शैली पर प्रभाव पड़ना स्वाभाविक ही था। परन्तु आरम्भ से ही उनकी प्रवृत्ति हिन्दी-शैली की विशेषताएँ अपनाने की ओर रही और शीघ्र ही इस प्रयत्न में वे पर्याप्त सफलता प्राप्त कर सके। फलतः हिन्दी की अभिव्यंजन-शैली के विकास में उन्होंने

महत्वपूर्ण योग दिया। उनकी शैली में सर्वत्र एक प्रकार की सरलता है जिसमें भावावेश के कारण सजीवता और बल आ जाता है। जहाँ कोमल भावों की व्यंजना है, वहाँ भाषा मधुर और कोमल हो गई है; जहाँ क्रोध की उग्रता दिखाई गई है वहाँ शैली भी उग्र और ओज-पूर्ण हो गई है; जहाँ तिरस्कार, अवहेलना अथवा अपमान-संबंधी भाव स्पष्ट किए गए हैं' वहाँ शब्दों का चयन इस ढंग का मिलता है। जिससे घृणा का भाव स्पष्ट हो जाय। नीचे के उदाहरण देखिए—

रानी जाह्नवी के हृदय में सोफिया के प्रति स्नेह का संचार होता है, तब वह कहती है--बेटी, तुम देवी हो, मेरी बुद्धि पर परदा पड़ गया था, मैंने तुम्हें पहचाना न था। मुझे सब मालूम है बेटी! सब सुन चुकी हूँ। तुम्हारी आत्मा इतनी पवित्र है, यह मुझे मालूम न था। आह! अगर पहले से जानती। रंगभूमि, पृ० ७४२

ऐसा ही स्नेह बुढ़िया पठानिन के हृदय में संचारित होता है और कृतज्ञ होकर वह कहती है—मेरा बच्चा इस बुढ़िया के लिए इतना हैरान हो रहा है। इतनी दूर से दौड़ा आया। पढ़ने जाते हो न बेटा, अल्लाह तुम्हें बड़ा दरजा दे। कर्मभूमि, पृ० ४६

परंतु जब इन्हीं दोनों स्त्रियों को कारणवश क्रोध आ जाता है तब शैली ओजपूर्ण हो जाती है। उसी सोफिया से रानी जाह्नवी कहती है—मैं राजपूतनी हूँ, मरना भी जानती हूँ और मारना भी जानती हूँ। इसके पहले कि मैं तुम्हें विनय से पत्र-व्यवहार करते देखूँ, मैं तुम्हारा गला घोंट दूँगी। रंगभूमि, पृ०२५८

बुढ़िया पठानिन भी क्रोध में आकर उसी अमर से आग भरे शब्दों में कहती है—होश में आ छोकरे! बस, अब मुँह न खोलना, चुपचाप चला जा, नहीं आँखें निकलवा लूँगी। तू है किस घमंड में?

खबरदार, जो कभी इधर का रुख किया। मुँह में कालिख लगा कर चला जा। कर्मभूमि, पृ० १७५

इसी प्रकार 'जहाँ भावों का उद्गार हृदय का ज्वालामुखी फाड़कर निकलना' चाहता है, वहाँ तो शैली ऐसी ही बलशाली हो गई है, और जहाँ किसी मार्मिक, अथवा सुन्दर मनोहारी दृश्य या भाव को स्पष्ट करना होता है, वहाँ शैली में सरल अलंकारों को उन्होंने योजना की है। इससे भी शैली में विशेष सजीवता आ जाती है। उदाहरण के लिए—

(१) गंगाजली ने उन्हें पकड़ने को हाथ फैलाये, पर उसके दोनों हाथ फैले ही रह गए, जैसे किसी गोली खाकर गिरनेवाली चिड़िया के दोनों पंख खुले रह जाते हैं। सेवासदन, पृ० १४

(२) आनंद, महीनों चिंता के बंधन में पड़े रहने के बाद आज जो छूटा तो छूटे हुए बचड़े की भाँति कुलाचें मारने लगा।

—कर्मभूमि, पृ० १०४

अलंकारों का यह विधान सुन्दर और मार्मिक तो अवश्य है, परन्तु जब लेखक इन्हीं के फेर में पड़कर अलंकारों की झड़ी-सी लगाने लगता है तब शैली में स्वाभाविक मार्मिकता नहीं रह जाती; वरन पाठकों को उससे एक प्रकार की अरुचि-सी हो जाती है। प्रेमचन्द जी की रचनाओं में कुछ ऐसे स्थल हैं—

(१) व्याकुल हो गई—जैसे दीपक को देखकर पतंग, वह अधीर हो उठी जैसे खाँड़ की गन्ध पाकर चींटी। वह उठी और द्वारपालों, चौकीदारों की दृष्टि को बचाती हुई राजमहल के बाहर निकल आई—जैसे वेदना-पूर्ण क्रन्दन सुनकर आँसू निकल आते हैं।

(२) जैसे सुन्दर भाव के समावेश से कविता में जान पड़ जाती

है, और सुन्दर रंगों से चित्र में, उसी प्रकार दोनों बहनों के आ जाने से झोंपड़े में जान आगई। अंधी आँखों में पुतलियाँ पड़ गईं। मुरझाई हुई कली शांता अब खिलकर अनुपम शोभा दिखा रही है। सूखी हुई नदी उमड़ पड़ी है। जैसे जेठ-बैसाख की तपन की मारी हुई गाय सावन में निखर आती है और खेतों में किलोलें करने लगती है, उसी प्रकार विरह की सताई हुई रमणी अब निखर गई है।

ऊपर के चारों उदाहरण देखकर कह सकते हैं कि उनका अलंकार-विधान उपमा, उत्पेक्षा आदि का आश्रय लेकर विषय को स्पष्ट और सुंदर कर देना कहीं-कहीं सुंदर प्रभावोत्पादक हो जाता है और लेखक की अभीष्टि-सिद्धि में सहायक हो जाता है तो कहीं-कहीं पर अति के कारण अस्वाभाविक और कृत्रिम-सा लगने लगता है। हाँ, इसमें कोई संदेह नहीं कि कहीं-कहीं इनकी रचनाओं में गद्यकाव्य-सा आनंद आता है। ऐसे स्थलों पर भावों की सुकुमारता और मधुरता का मिश्रण पाठकों को मुग्ध कर लेता है। उदाहरण के लिए—

गगन-मंडल में चमकते हुए तारागण व्यंग्य-दृष्टि की भाँति हृदय में चुभते थे। सामने वृक्षों के कुंज थे, विनय की स्मृतिमूर्ति, श्याम, करुण स्वर की भाँति, कंपित धुएँ की भाँति असंबद्ध, यों निकलती हुई मालूम होती हुई जैसे किसी संतप्त हृदय से हाय की ध्वनि निकलती है। रंगभूमि, पृ० ४५६

सरलता के साथ-साथ प्रेमचंद जी की शैली में प्रायः सर्वत्र एक प्रवाह रहता है। शिथिलता का अभाव तो ऐसे स्थलों पर रहता ही है साथ ही सजीवता के कारण एक प्रकार की प्रभावोत्पादक

मनोहरता आ जाती है। वाक्य, इस शैली के प्रायः छोटे-छोटे हैं जो 'गंभीर घाव' करते हैं। एक वाक्य दूसरे से निकल कर इस शैली को और भी गठित कर देता है। भाषा तो ऐसे स्थलों की प्रचलित होती ही है। उदाहरण के लिए भारतीय किसान का वह चित्र देखिये—

सीधे-साधे किसान, धन हाथ आते ही धर्म और कीर्ति की ओर झुकते हैं। दिव्य समाज की भाँति वे पहल अपने भोग-विलास की ओर नहीं दौड़ते। सुजान की खेती में कई साल से कंचन बरस रहा था। मेहनत तो गाँव के सभी किसान करते थे, पर सुजान के चन्द्रमा बली थे, ऊसर में भी दाना छिटक जाता तो कुछ न कुछ पैदा हो ही जाता था। तीन वर्ष लगातार ऊख लगती गई, उधर गुड़ का भाव तेज था, कोई दो-ढाई हजार हाथ में आ गए। बस, चित्त की वृत्ति धर्म की ओर झुक पड़ी। साधु-संतों का आदर-सत्कार होने लगा, द्वार पर धूनी जलने लगी।

कानूनगो इलाके में आते, तो सुजान महतो की चौपाल में ठहरते। हल्के के हेड कांस्टेबिल, थानेदार, शिक्षा-विभाग के अफसर, एक-न-एक उस चौपाल में पड़ा ही रहता। महतो मारे खुशी के फूले न समाते। धन्य भाग्य! उनके द्वार पर इतने बड़े-बड़े हाकिम आकर ठहरते हैं। जिन हाकिमों के सामने उनका मुँह न खुलता था, उन्हीं की अब महतो-महतो करते जबान सूखती थी। कभी-कभी भजन-भाव हो जाता। एक महात्मा ने डौल अच्छा देखा तो गाँव में आसन जमा दिया। गाँजे और चरस की बहार उड़ने लगी। एक ढोलक आई, मँजीरे मँगवाए गए, सत्संग होने लगा। यह सब सुजान के दम का जहूरा था। घर में सेरों दूध होता, मगर सुजान के कंठतले

एक बूंद भी जाने की कसम थी। कभी हाकिम लोग चखतें, कभी महात्मा लोग।

—सुजान भगत' शीर्षक कहानी

हास्य और व्यंय का पुट—इस अवतरण में जैसे मीठे व्यंग की पुट है वैसी ही उनकी रचनाओं में कई स्थानों पर मिलती है। यद्यपि उन्होंने सामाजिक बुराइयाँ, राजनीतिक दोष, धार्मिक पाखंड, नैतिक कुरीतियों आदि की व्यंगात्मक शैली में विवेचना की है तथापि उनका व्यंय कभी इतना चुटीला नही होता जो किसी को कष्ट पहुँचाए, उसमें सर्वत्र एक मिठास रहती है जो मनोरंजन के साथ-साथ हमारी आँखें भी खोलती है। हास्य और व्यंग की मिश्रित पुट इस अवतरण को कैसा मार्मिक बना देती है! वकील साहब अपने खर्चे में कमी करने की चिंता में हैं। परेशान-होते-होते एक विचार सूझा कि रातिब में कुछ कमी कर दी जाय; इस पर उनकी स्त्री सुभद्रा व्यंय करती हुई कहती है—

हाँ, यह दूर की सूझी। घोड़े को रातिब दिया ही क्यों जाय? घास काफी है। यही न होगा, कूल्हे पर हड्डियाँ निकल आवेंगी। किसी तरह मर-जीकर कचहरी तक ले ही जायगा। कोई यह तो नहीं कहेगा कि वकील साहब के पास सवारी नहीं है— सेवासदन, पृ० १६

मुहाविरे और सूक्तियाँ—उनकी शैली की अंतिम बिशेषता है मुहावरों और सूक्तियाँ का सुन्दर प्रयोग। उर्दू पर पूर्ण अधिकार होने के कारण मुहावरों की झड़ी-सी लगाना तो प्रेमचंद जी के लिए स्वाभाविक था और उर्दू -क्षेत्र में आने वाले लेखकों ने ऐसा ही किया भी है; पर चार-पाँच वाक्यों के बीच में एक-आध 'मर्मभेदनी और अनुभूतिमूलक' सूक्ति जड़ देना उनकी निजी विशेषता है। इन

सूक्तियों में जीवन के सच्चे अनुभवों का सार रहता है और इसीलिए इनमें हृदय को छूने की शक्ति है। दो-एक सूक्तियाँ देखिए—

(१) प्रेम हृदयों को मिलाता है, देह पर उसका वश नहीं चलता।

(२) प्रेम हृदय के समस्त सद्भावों का शांत, स्थिर उद्गार-हीन समावेश है।

(३) अनुराग, यौवन या रूप या धन से नहीं उत्पन्न होता। अनुराग, अनुराग से उत्पन्न होता है।

ऐसी सूक्तियों से हमारे जीवन का संबंध है और इसीलिए किसी समय इनका उसी प्रकार आदर होगा जिस प्रकार कबीर या तुलसी की सूक्तियों का आज हो रहा है।

(च) कथोपकथन—प्रत्येक व्यक्ति की बातचीत पर सबसे अधिक प्रभाव उसकी प्रकृति का पड़ता है। इसके पश्चात उसकी रुचि, विषय और मानसिक स्थिति का नंबर आता है। जो लेखक पात्र के मुख से शब्द निकलवाने के पूर्व एक बार सोंच लेगा कि अमुक प्रकृति का व्यक्ति ऐसी स्थिति में इस प्रकार के वाक्य कहेगा या नहीं उसी के कथोपकथन सफल और प्रभावोत्पादक होंगे। इस प्रकार उपयुक्तता अथवा स्वाभाविकता कथोपकथन की प्रधान कसौटी है। अपने उपन्यासों में पात्रों की बातचीत कराते समय प्रेमचन्द ने इसका आवश्यक ध्यान रखा है और इसका प्रमाण यह है कि एक ही पात्र भिन्न स्थिति में भिन्न स्वर से बात करता है। यह स्वरपरिवर्तन लेखक की सतर्कता का द्योतक है। शतरंज में जीतते समय रमेश बाबू जिस उत्साह से बात करते हैं चौथी बाजी हारते ही वह गायब हो जाता है और पाँचवीं बाजी बिना खेले ही सो जाने का आग्रह वे करने लगते हैं। जो रमा नौकरी के लिए रमेश बाबू से मिलने पर बहुत आग्रह

कर रहा था वही जगाये जाने पर कच्ची नींद की खुमारी में कहता है—नाहक जगा दिया। कैसे मजे की नींद आ रही थी;

अजी, वह अर्जी देना है कि नहीं तुमको ?

आप दे दीजियेगा।

और जो कहीं साहब ने बुलाया तो मैं ही चला जाऊँगा ?

ऊँह, जो चाहे कीजियेगा। मैं सोता हूँ—पृ० ३६—।

कथोपकथन का साहित्यिक मूल्य यह है कि उससे पात्रों के चरित्र पर प्रकाश पड़ता है। वस्तुतः चरित्र की अच्छी या बुरी बात की विवेचना के लिए जहाँ कई पंक्तियाँ चाहिएँ और फिर भी बात स्पष्ट न हो, वहाँ बातचीत कराते समय एक साधारण शब्द से यह काम निकाला जा सकता है। ऐसा होता तभी है जब विस्तार के प्रलोभन में न पड़कर लेखक व्यर्थ की बातचीत में पाठकों को न फँसाकर सतर्कता से काम ले। नीचे का कथोपकथन जीवन के एकाकी-पन से ऊबी परोपकारिणी जोहरा, बाल-बच्चों के मोह में फँसे कायर रमानाथ और पति का कल्याण भर चाहनेवाली स्वार्थिनी जालपा की मनोवृत्तियाँ किस खूबी से दिखलाता है—

जोहरा—(पानी में डूबती लाश को बचाने) मैं जाती हूँ।

रमा—जाने को मैं तैयार हूँ; लेकिन वहाँ तक पहुँच भी सकूँगा, इस में संदेह है। कितना तोड़ है !

जोहरा—नहीं, मैं अभी निकाले लाती हूँ।

रमा—(सशंक होकर) क्यों नाहक जान देने जाती हो ? वहीं शायद एक गड्ढा है। मैं तो जा ही रहा था।

जोहरा—नहीं, नहीं, तुम्हें मेरी कसम; तुम न आना। मैं अभी लिए आती हूँ। मुझे तैरना आता है।

जालपा—लाश होगी और क्या ?

रमा—शायद अभी जान हो ।

जालपा—अच्छा, जोहरा तैर भी लेती है ! जभी हिम्मत हुई ।

रमा—हाँ, कुछ जानती तो है । ईश्वर करे लौट आये, मुझे अपनी कायरता पर लज्जा आ रही है ।

जालपा—इसमें लज्जा की कौन बात है ? मरी लाश के लिए जान को जोखिम में डालने से क्या फायदा ? जीती होती तो मैं खुद तुम से कहती, जाकर निकाल लाओ ।

रमा—यहाँ से कौन जान सकता है, जान है या नहीं ? सचमुच बाल-बच्चों वाला आदमी नामर्द हो जाता है मैं खड़ा रहा और जोहरा चली गई ।

बातचीत के सिलसिले में कभी कभी ऐसा प्रश्न सामने आ जाता है कि उसका उत्तर समझ में नहीं आता । ऐसे अवसरों पर यदि उचित उत्तर सूझ जाय तो बड़ी प्रसन्नता होती है कुशल उपन्यासकार के कथोपकथन में यह विशेषता अवश्य रहनी चाहिये । यद्यपि इससे पात्रों के चरित्र पर विशेष प्रकाश नहीं पड़ता क्योंकि एक तो ऐसे स्थल लम्बे नहीं होते और दूसरे उनका घनिष्ट सम्बन्ध केवल सूझ-बूझ से रहता है, तथापि पात्र की हाजिरजवाबी से लेखक की तीव्र बुद्धि का पता लगता है । ऐसे प्रश्न सुनकर पाठक की उत्सुकता बढ़ जाती है और उत्तर में यदि कुछ विशेषता हुई तो उसका चित्त चमत्कृत हो जाता है । इसके दो उदाहरण देखिए—

(१) रतन—न जाने क्यों तुम्हें छोड़ने को जी नहीं चाहता । तुम्हें पाकर रमानाथ जी अपना भाग्य सराहते होंगे ?

जालपा—(मुसकराकर)—भाग्य-वाग्य तो कहीं नहीं सराहते,

घुड़कियाँ जमाया करते हैं—पृ० ८२—।

(२)रमेश—कुछ समझ में नहीं आता। नोट थे, जेब में डाल कर चल दिए। बाजार में किसी ने नोट निकाल लिए। (मुसकराकर) किसी और देवी की पूजा तो नहीं करते ? जलापा का मुख लज्जा से लाल हो गया; उसने सम्हलकर उत्तर दिया—अगर यह ऐब होता तो आप भी इस इलजाम से न बचते—पृ० १४५—।

कथोपकथन छोटे ही हों तो उनमें रोचकता रहती है; बड़े बड़े परिच्छेद बातचीत को अरुचिकर बना देते हैं और स्वाभाविक भी। 'गबन' में दो-एक स्थलों पर यह दोष खटकता है। वकील साहब और रमा की लड़कियों की शिक्षा विषयक बातचीत में यही दोष है।

(छ) देशकाल का प्रतिबिम्ब—बूढ़े, प्रौढ़ और युवक, समाज में इन्हीं की गिनती होती है। हमारे यहाँ आज नब्बे प्रतिशत बूढ़े ऐसे हैं जिन्होंने, दैवी आपत्तियों की बात यदि छोड़ दी जाय तो कहा जा सकता है कि बड़ी सादगी सच्चरित्रता, सुख, शांति और पारस्परिक सहानुभूति से जीवन के दिन बिताए हैं। जीवन के प्रभात काल से तीसरे पहर तक सप्राण और पुष्टिकारी भोजन की जिन्हें कमी नहीं रही; सादगी, अकृत्रिमता और शारीरिक श्रम ने उनके स्वास्थ्य को डाक्टरी दवा का मुहताज नहीं होने दिया है। स्वभाव के वे सरल, निष्कपट, प्रेमी और दयालु हैं; हाथ से काम करने में उन्हें लज्जा नहीं आती। धर्म पर उनका विश्वास है और पूजा-पाठ तीर्थ-व्रत कर्म-कांड को वे धर्म का आवश्यक-अंग समझे हुए हैं। 'गबन' में देवीदीन इसी वर्ग का प्रतिनिधि है। रमा की दृष्टि में वह 'सरल' परोपकारी और निष्कपट जीव है। सभ्यता के नाम पर मौखिक सहानुभूति भर दिखाकर शांत हो जाना यह वर्ग नहीं सीखा; प्रत्युत बिना जान-पहचान वाले

यात्री के किराए के रुपये वह बेमांगे ही दे सकता है। आज की जनता की तरह गाड़ी के सभी यात्री ऐसे बूढ़े को श्रद्धा की दृष्टि से देखते हैं ; परन्तु उसी तरह जैसे श्मशान पर पहुँच कर हमारे मन में संसारकी नश्वरताको लेकर दार्शनिक विचार क्षण भर के लिए आते हैं।

भारतीय समाज में देवीदीन जैसे व्यक्तियों की संख्या अभी नब्बे प्रतिशत है। शेष दस व्यक्ति नई रोशनी के हैं। इन्होंने बिदेशी शिक्षा, रहन-सहन और चाल-ढाल की ऊपरी बातें अपना ली हैं ; परन्तु संस्कार इनके अब भी पूर्ववत् भारतीय ही हैं। 'गब्बन' के वकील साहब को हम इसी श्रेणी में रख सकेंगे।

प्रौढ़ों के दो वर्ग हैं। एक, उक्त बूढ़ों के संपर्क में अधिक रहने से उन्हीं की विशेषताएँ-अविशेषताएँ अपना सका है और दूसरा अँगरेजियत की नई रोशनी में पड़ कर बड़ा हुआ है। प्रथम वर्ग में जितनी भारतीयता की छाप है, द्वितीय में उसी अनुपात में अँगरेजियत की समझनी चाहिए। भौतिकता प्रेम, जीवन की व्यस्तता का रोना, हार्दिक सहानुभूति की दुहाई अपना काम अटकने पर देना, पर दूसरे के मौके पर विवशता का पल्ला पकड़ने का प्रयत्न करना, उचित से कहीं अधिक मात्रा में अनुचित उपायों का सहारा ले आवश्यकता से अधिक धन अर्जन कर डाक्टरों या वकीलों की फीस में खर्च कर देना जिनका दैनिक जीवन है, उनकी संख्या हमारे नागरिक समाज में साठ प्रतिशत के लगभग होगी। शेष चालीस प्रतिशत प्रथम वर्ग में आते हैं जिनको दस-पाँच सेर का बोझ सर पर उठा लने में शर्म नही मालूम देती, रिश्वत के नाम पर पैसा लेते जो आज भी सकुचाते हैं। 'शबन' में दयानाथ प्रथम वर्ग के और रमेश बाबू तथा दीनदयाल दूसरे के व्यक्ति है।

युवकों में पचास प्रतिशत स्वयं विदेशी शिक्षा पाकर अथवा अँगरेजी वातावरण में पल कर विदेशीपन चाहने लगते हैं और भारतीय संस्कृति की महत्ता से अज्ञानता के कारण उनका चित्त चमत्कृत नहीं होता। रहन-सहन, चाल-ढाल उनकी सभी बातों पर धीरे धीरे बिदेशीपन का प्रभाव पड़ता जाता है। शेष पचास प्रतिशत में चालीस ऐसे हैं जिन्होंने यद्यपि अँगरेजी शिक्षा नहीं पाई है तथापि शिक्षित युवकों के साहचर्य से अँगरेजियत की विशेषताएँ समझी जाने वाली बातों को उन्होंने सहर्ष अपना लिया है। दस प्रतिशत युवक अभी भारतीय संस्कारों से ही प्रभावित हैं यद्यपि उनकी आँखें भी अपने समवयस्कों की ओर जा चुकी हैं। मणि-भूषण की गिनती पहले वर्ग में होगी और रमानाथ की दूसरे में।

स्त्रियों में वृद्धाएँ अभी पुराने रहन-सहन को ही सम्मान देती आ रही हैं। प्रौढ़ाओं ने अँगरेजी पहनावे की स्वच्छता को अपनाया है। युवतियों के मुख्यतः तीन वर्ग हैं। प्रथम वर्ग उन वृद्धाओं और प्रौढ़ाओ के दबाव में हैं जिन्हें स्त्री-स्वतंत्रता का विरोधी समझा जा सकता है। आज दिन इस वर्ग की संख्या दस प्रतिशत से अधिक न होगी। यही संख्या थोड़ी-बहुत पढ़ी-लिखी उन युवतियों की है जो समर्थ और अग्रगामी परिवारों की दो-एक सहपाठिनियों मे मिल कर विदेशी रहन-सहन की ऊपरी बातें अपनाने लगी हैं। इनमें एक युवती यदि पाश्चात्यपन की पुजारिन मिलेगी तो नौ ऐसी होंगी जिन्हों ने उसकी नकल करना भर सीखा है। शेष अस्सी प्रतिशत युवतियाँ शिक्षा के क्षेत्रों और केन्द्रों से बाहर पल कर, मानव स्वभाववश नए रंग-ढंग अपनाने को तैयार हैं। रतन की गिनती दूसरे वर्ग में और जालपा की तीसरे में की जानी चाहिए।

कला की कसौटी पर

(क) आदर्श और यथार्थ—साहित्य को जीवन की व्याख्या कहा जाता है। इसके दो रूप साहित्य में दिखते हैं। पहला सहज और प्राकृत रूप जिसे साहित्यिक ने जैसा देखा है वैसा चित्रित किया है। दूसरा रूप वह है जिसे लेखक अपने संस्कार अथवा सद्बुद्धि के अनुसार मानव मात्र के लिए हितकर समझ कर दूसरों के अपनाने के उद्देश्य से सामने रखता है। साहित्य में प्रथम को यथार्थ और द्वितीय को आदर्श चित्रण कहा गया है। यथार्थ और आदर्श चित्रण में अन्तर संभव है यह समझा जाय कि प्रथम रूप में लेखक जीवन या समाज की स्थिति का सत्य चित्रण करता है; इसलिए अनेक लेखकों का यथार्थ चित्रण प्रायः समान होना चाहिए। भिन्न साहित्यकारों के आदर्श चित्रण में ही भिन्नता होगी, क्योंकि सभी के उद्देश्य और आदर्श भिन्न होते हैं और चित्रण की गतिविधि पर उन्हीं का प्रधान प्रभाव पड़ता है। परन्तु सत्य यह है कि एक ही यथार्थ चित्रण अनेक लेखकों के ग्रंथों मे भिन्नता लिए हुए मिलेगा और यह भिन्नता उस समय और भी बढ़ जायगी जब स्थिति का चित्रण न कर लेखक जीवन की व्याख्या में प्रवृत्त होगा। कारण स्पष्ट है। एक ही सत्य चित्र को विविध दिशाओं में बैठे अनेक लेखक भिन्न दृष्टिकोणों से देखेंगे। उदाहरण के लिए सामने मैदान में एक निर्धन स्त्री अपने दो बालकों के साथ भूख से तड़प रही है। राजनीतिक दृष्टिकोण वाला लेखक इस दृश्य को पाठकों के सामने इस ढंग से प्रस्तुत करना

चाहेगा कि विदेशी शासन में जीवन के संकट अथवा शासक-वर्ग द्वारा प्रजा के दुख दूर करने की असावधानी या इसी ढंग की कोई बात सिद्ध करने का अवसर उसे मिल सके। अर्थशास्त्रज्ञ इस दृश्य से भारतीय निर्धनता प्रमाणित करने का मसाला पा जायगा तो समाजवादी साम्यवाद की दुहाई देकर अर्थ-वितरण की वर्तमान कालीन विषमता की पुकार मचायगा और इसी प्रकार धर्म का पुजारी इस दृश्य से भाग्य, कर्मवाद और कलियुग के पापों की घोषणा करने का प्रयत्न करेगा। अपने वर्णन की प्रस्तावना सभी लेखक इस ढंग से आरंभ करेंगे कि चित्र की यथार्थता तो कम, पर प्रस्तावित समस्या ही पाठक का ध्यान अधिक आकर्षित कर सकेगी। अस्तु।

प्रेमचंद जी ने जीवन की व्याख्या दोनों ही रूपों में की है। यथार्थवादिता को तो इन्हें इसलिये अपनाना पड़ा कि पाश्चात्य साहित्य का अनुकरण-लालसा से अध्ययन करके प्रत्यक्ष की वास्तविकता पर विश्वास करने की प्रवृत्ति रखने वाले आधुनिक पाठक अस्वाभाविक वर्णन की भूलभुलैया में ज्यादा दिन तक भटकने को तैयार नहीं थे। और आदर्शवाद को अपनाने का कारण है आर्य-संस्कार-प्रधान वातावरण में उनका फलना-फूलना जिसका पर्याप्त प्रभाव अभी पचास प्रतिशत हिन्दुओं पर स्पष्ट दिखाई देता है जिसके फलस्वरूप उनकी दृष्टि बराबर उपयोगितावाद पर टिकी है। इस सम्बन्ध में ध्यान रखने की बात यह है कि यथार्थ और आदर्श दोनों के चित्रण में प्रेमचंद जी ने संयम को हाथ से जाने नहीं दिया हैं। यथार्थ के चित्रण में अरुचिकर नग्नता के अश्लील और अभद्र चित्र उन्होंने जनता के सामने नही रखे हैं और आदर्श की कल्पना में उतने मग्न भी नहीं होगए हैं कि कोरे भावुक और कल्पना प्रिय कवियों की तरह सुखद

स्वप्न भर देखते रहें। वस्तुतः यथार्थ की कुरूपता और क्षोभकारिता मिटा कर सुन्दर सुडोल रूप देना उनका प्रयत्न रहा है और हम समझते हैं कि मानवमात्र के कल्याणार्थ दृष्टिकोण की संकुचितता से मुक्त सभी सहृदय इसके लिए उनका अभिनंदन ही करेंगे।

(ख) प्रासंगिक विषय—अनुभवी लेखकों के पास लिखने के लिए इतने अधिक प्रसंग रहते हैं कि कथानक के-विकास के समय उनके त्याग और चुनाव में बड़ी सतर्कता से उसे काम लेना पड़ता है। अप्रासांगिक विषयों को अपना लेने से अथवा विषय-विशेष की व्याख्या को अनावश्यक विस्तार देने से उपन्यास का कलेवर तो बढ़ जाता है, पर उसके अनेक स्थल अरोचक भी हो जाते हैं। 'गबन' में ऐसे खटकने वाले स्थल एकाध ही हैं। इस उपन्यास का आरम्भ और विकास इस दृष्टि से प्रेमचन्द जी ने बड़ी सुन्दरता से किया है। प्रथम पाँच-सात अध्यायों में और उनके बाद भी लेखक को अनेक ऐसे विषय मिलते हैं—यथा झूले के गीत और उनकी सरसता, मुख्तार दीनदयाल का पारिवारिक जीवन, रामनाथ की दिनचर्या, दयानाथ की आर्थिक कठिनाइयाँ, बारात की जावट, वैवाहिक तैयारियाँ और धूमधाम आदि—परन्तु लेखक ने सर्वत्र दो चार वाक्यों में संकेत करके ही अपना काम निकाला है और उपन्यास की प्रधान समस्या से ही इन सबको सम्बन्धित करके इनकी सार्थकता बढ़ा दी है।

सामयिक समस्याओं के संबंध में भी अपने ज्ञान का परिचय देने के अवसर पग पग पर मिलते हैं। किसी भी प्रसंग का वर्णन हो रहा हो, दो चार वाक्यों में देश, जाति अथवा समाज की सामयिक स्थिति और समस्या अथवा उसके किसी अंग की परिचायक आलोचना कर देना उसके लिए बहुत साधारण बात है।

इस वर्णन में लेखक को कुशल उस समय माना जायगा जब उसका कथन उपन्यास-कथा के लिए उस स्थल पर अत्यन्त उपयुक्त समझा जाय और पाठक को यह भास न हो कि लेखक किसी उद्देश्य-विशेष से इतने वाक्य लिख गया है।

प्रेमचन्द जी इस कला में सिद्धहस्त हैं। सामयिक स्थिति के संबंध में लगे हाथ अपना मत प्रकट करने का कोई अवसर पाकर वे चूके नहीं हैं और अपने विचार उन्होंने इतनी सफाई से व्यक्त किए हैं कि सर्वत्र वे स्थिति और पात्रों की प्रकृति से मेल खाते हैं। उदाहरण के लिये देखिए कि क्लर्कों की दशा, जन्माष्टमी के पुण्यावसर पर वेश्यानृत्य के अनौचित्य के संबंध में अपने विचार उन्होंने इस प्रकार प्रकट किए हैं—

(क) रमा०—पहले मुझे क्लार्क पर बड़ी हंसी आती थी, मगर वही बला मेरे सर पड़ी। साहब डाँट-बाँट तो न बताएँगे?

रमेश—बुरी तरह डाँटता है, लोग सामने जाते काँपते हैं।

रमा०—तो फिर मैं घर जाता हूँ। यह सब मुझ से न बरदास्त होगा।

रमेश—पहले सब ऐसे ही घबराते हैं, मगर सहते सहते आदत पड़ जाती है। तुम्हारा दिल धड़क रहा होगा कि न जाने कैसे बीतेगी। जब मैं नौकर हुआ, तो तुम्हारी ही उम्र मेरी भी थी और शादी हुए तीन ही महीने हुए थे। जिस दिन मेरी पेशी होने वाली थी, ऐसा घबराया हुआ था, मानों फाँसी पाने जा रहा हूँ। मगर तुम्हें डरने का कोई कारण नहीं है। मैं सब ठीक कर दूँगा।

(ख) रमेश—आओजी, रात क्यों नहीं आए? मगर यहाँ गरीबों के घर क्यों आते? सेठ जी की झाँकी कैसे छोड़ देते? खूब बहार रही होगी?

रमा—आपकी सी सजावट तो न थी, हाँ और सालों से अच्छी थी। कई कथिक और वेश्याएँ भी आई थीं। मै तो चला आया था, मगर सुना रात भर गाना होता रहा।

रमेश—सेठ जी ने तो वचन दिया था कि वैश्यायें न आने पायेंगी, फिर यह क्या किया। इन मूर्खों के हाथों हिन्दू धर्म का सर्वनाश हो जायगा। एक तो वेश्याओं का नाच यों भी बुरा, उसपर ठाकुरद्वारे में। छिः छिः! न जाने इन गधों को कब अक्ल आयगी।

रमा—वैश्याएँ न हों, तो झाँकी देखने जाय ही कौन? सभी तो आपकी तरह योगी और तपस्वी नहीं हैं।

रमेश—मेरा वश चले, तो मैं क़ानून से यह दुराचार बंद करा दूँ। खैर व फ़ुरसत हो तो आओ एकाध बाजी हो जाय।

इन दोनों उद्धरणों के प्रथम और,अंतिम वाक्यों से स्पष्ट होता है कि दोनों प्रासंगिक विषय है जिनकी आलोचना करके लेखक शीघ्र ही अपने मूल विषय पर आ जाता है। इसी प्रकार व्यापारियों की चालें, गहनों का मरज, वकीलों की दशा, डाक्टरों की स्थिति, अँगरेजियत की नकल, सुदेशी-विदेशी की समस्या, आदि पर भी लेखक ने विचार किया है। उपन्यास के आरंभ में जागेश्वरी और दयानाथ के वाद-विवाद से आज की वैवाहिक समस्याओं से हम परिचित होते हैं। सेठ करोड़ीमल का दो पेज का प्रसंग भी, जिससे मिलमालिकों की दोहरी व्यवहार-नीति का परिचय मिलता है, लेखक ने खटकने से बचाने के लिए रमा के जीवन से संबंधित कर दिया है।

(ग) सूक्ष्मदर्शिणी दृष्टि—कथा-विकास की मोटी मोटी बातों की विवेचना से अधिक महत्वपूर्ण हैं पात्रों के मस्तिष्क में उठने

उन आकर्षक और सूक्ष्म भावों की ओर सतर्कता से संकेत करना जो प्रत्येक उल्लेखयोग्य स्थिति में अलक्षित रूप से जन्मते और विलीन होते रहते हैं। इनके चित्रण में वही लेखक सफल हो सकेगा जिसकी अन्तर्दृष्टि पैनी और सतर्क होगी। 'गबन' में प्रेमचन्द जी ने अनेक स्थलों पर दृष्टि के इस पैनेपन और उसकी सतर्कता का सुन्दर परिचय दिया है। दो एक उदाहरण देखिए। बरात आने की सूचना पाकर भी नवयुवती जालपा 'बाजों की धों धों पों पों, मोटर की सजधज, फुलवारियों के तख्त, आतशबाजियों की फुलझड़ियाँ, हवाइयों की सरसराहट, और चर्खियों की चटख' आदि की ओर लेशमात्र भी आकर्षित वहीं होती। पर उस युवती के अंतर्प्रदेश में एक अभिलाषा अवश्य थी और प्रेमचंद जी से वह छिपी न रह सकी—'वह वर को एक आँख भर देखना चाहती है, वह भी सब से छिपा कर-पृ०१०-।'

संकट में पड़ा व्यक्ति शीघ्र से शीघ्र उससे छुटकारा पाने का उपाय सोचता है। रमानाथ भी गहने चले जाने पर पत्नी की दयनीय दशा देख कर ऐसा उपाय सोंच निकालना चाहता है जिससे वह 'जल्द से जल्द अतुल संपत्ति का स्वामी हो जाय। कहीं उसके नाम कोई लाटरी निकल आती! फिर तो वह जालपा को आभूषणों से मढ़ देता। सब से पहले चंद्रहार बनवाता; उसमें हीरे जड़े होते। अगर इस वक्त उसे जाली नोट बनाना आ जाता, तो वह अवश्य बनाकर चला देता —पृ० ३०—।

रमा को म्युनिसिपैलिटी में जगह मिली। बूढ़े मियाँ ने चार्ज दिया और घर चले। उस समय तीस वर्ष पुरानी जगह छोड़ते हुए खाँ साहब को जो दुख हुआ उसके संबंध में भी प्रेमचंद जी संकेत करना नहीं भूले हैं और साथ साथ अवस्थाजनित प्रकृति के अनुसार उनसे

रमा को शिक्षा भी दिला दी है। कायस्थ का बच्चा रमा कलकत्ते के प्रवास काल में अपने को ब्राह्मण सिद्ध करता है। सामने सेठ करोड़ीमल की दानशाला है। शीत के कष्टों से पीड़ित होकर रमा एक बार सोचता है—एक कंबल ले लिया जाय तो क्या हरज ? गरीब ब्राह्मण अगर दान का अधिकारी नहीं तो और कौन है ? यहाँ मुझे कौन जानता है-पृ० १६३। दूसरे ही क्षण उसका आत्म-सम्मान जाग उठता है और वह कुछ देर वहाँ खड़ा ताकता रहा फिर आगे बढ़ा। परंतु मुनीम के कहने पर—जबरदस्ती करने पर—जब रमा ने कंबल ले ही लिया तो दक्षिणा लेने से साफ़ इनकार ही उसे करते बना। 'जन्मजन्मांतर की संचित मर्यादा कंबल लेकर ही आहत हो उठी थी, दक्षिणा के लिए हाथ फैलाना उसके लिए असंभव हो गया'पृ०-० १६४

(घ) जीवन की व्याख्या—प्रकट और गुप्त अभाव-जन्य व्यक्त-अव्यक्त व्यथा की कहानी का नाम जीवन है। मनुष्य उस समय तक दुखी और मलीन रहता है जब तक उसे अभावों की चिंताएँ कोंचती रहती हैं। अभावों में भी कुछ मुख्य होते हैं और कुछ गौण। गौणों के बिना दुखी रहने पर भी मनुष्य की क्रियाशीलता ज्यों की त्यों बनी रहती है, नियमों से उसका क्रम नहीं टूटता। परंतु किसी भी मुख्य अभाव की चिंता जीवन को नीरस बना देती है। उस समय व्यक्ति जीवन के दैनिक काम मशीन की तरह करता है; उसके मस्तिष्क और हृदय के संबंध में स्निग्धता नहीं रह जाती। पश्चात, शरीर की सभी इंद्रियाँ केवल मस्तिष्क द्वारा संचालित होती हैं; हृदय उनके कार्यों में कोई रस नहीं लेता, उदासीन बना रहता है। कभी कभी अभाव के आघात का घाव भयंकर होने पर भी कालांतर में धीरे धीरे सूख जाता है। ऐसी स्थिति में दो बातें संभव हैं। यदि सामाजिक जीवन

के कार्य-कलाप से ऊब कर व्यक्ति उदासीन हो संसार से विरक्त हो गया तो जीवन की एकरसता बढ़ जाती है; रुचि किसी एक विषय में केंद्रित होकर अन्यों की ओर से तटस्थ बन जाती है। और कभी वह अभाव के मूलाधार की ओर से उदासीन होकर जीवित रहने के लिए सांसारिक संघर्ष में इसलिए शक्तिभर भाग लेता है कि इससे बचने का उपाय तो समझ में आता ही नहीं।

'गबन' की जग्गो और देवीदीन का जीवन-क्रम इसी ढंग का है। कराल काल की कोपानल में अपने दो जवान पुत्रों को झोंकने पर विवश होकर, शेष दो को उन्होंने 'सुदेसी-विदेसी' के महायज्ञ की पूर्णाहुति में समर्पित कर दिया। पुत्रों का अभाव उनके जीवन की प्रधानता है जिसे भुला देने को देवीदीन तो 'बिना बात की बात में हँसता है, और बुढ़िया चार बजे सवेरे से बारह बजे रात तक जीवन-संघर्ष में प्रतिपल जूझती हुई अपनी चेतनाशक्ति को भुलावे में डालने का प्रबल प्रयत्न करती है। कुछ समय पश्चात रमा को पाकर पुत्राभाव के प्रति तटस्थता का भाव मिटने लगता है, दोनों का संयम छूट जाता है। देवीदीन की उदासीनता दयामिश्रित होने के कारण अधिक शुष्क नहीं हुई है। इसलिए वह प्रथम परिचय में ही इस अपरिचित युवक के ऊपर अपने भूखे वात्सल्य को न्योछावर कर देता है। बुढ़िया जग्गो की चेतनाशक्ति अर्थ-संग्रह से विशेष संलग्न है; अतः प्रथम परिचय तो दूर, दो महीने तक समीप रहने पर भी रमा को वह 'अपना' नहीं समझती; उससे कुढ़ती रहती है और 'श्लेष-रूप में कभी कभी ताने भी सुनाती है।' रमा के लिए उसका वात्सल्य उस समय जागता है जब पति देवीदीन की अनुपस्थिति से ऊब कर उसके 'कुसंग' से छुटकारा पाने की चाह करते ही मृत पुत्रों की

उसे याद आ जाती है। लकड़ी की वार्निश चढ़ी जिस निर्जीव जोड़ी को वह अपने 'लाल' समझ रही है उसीके पास 'सजीव लाल' को देखकर वात्सल्य का आधार परिवर्तित हो जाता है और स्नेहभरी दृष्टि से रमा की ओर देखकर स्नेहसिंचित स्वर में मीठे संतरे खाने का प्रस्ताव वह कर बैठती है।

मानव-जीवन में भावों-अभावों की चाह की ऐसी क्रमिक व्याख्या के लिए लेखक ने सर्वत्र बड़े संयम और धैर्य से काम लिया है। अस्तु !

विभिन्न पहलुओं से जीवन की व्याख्या प्रेमचन्द्र जी के ग्रन्थों में मिलती है। सुख-दुख, आशा-निराशा, सफलता-असफलता, राग-विराग, सभी की साधारण-असाधारण अवस्थाओं का चित्रण उन्होंने किया है। दया, प्रेम, श्रद्धा, घृणा, ईर्ष्या, हास्य, व्यंग्य, आक्षेप, विनोद, कटाक्ष, प्रलाप सभी मानसिक स्थितियों में स्त्री-पुरुष की विचारधारा से उन्होंने हमें परिचित कराया है। उनके पात्र जीवन के कर्म-क्षेत्र में प्रवेश करके स्वयं कर्म करते हैं और हमें अपने रंग में रँग देते हैं—सुख में हँसा देते हैं, दुख में रुला भी देते हैं।

सुख-दुख के साथ आँख-मिचौनी खेलना, इसी का नाम तो जीवन है। स्वास्थ्य, धन, धाम, धान्य, संतान, परिवार आदि सुखद साधनों का एक वर्ग है और प्रयत्न-पूर्ति की आशा, सफलता दूसरे प्राणों को सुख देने वाले इन दोनों साधनों का संबंध व्यक्ति के निजी स्वार्थ से है; अपने ही सुख से वह सुखी होता है। इससे शुद्धतर सुख का अनुभव मनुष्य उस समय करता है जब दया, धर्म, परोपकार, करुणा आदि मनोवृत्तियों की प्रेरणा से दूसरों के रोते हुए हृदयों को प्रसन्न करने के लिए वह प्रेरित होता है। मानवोचित

सुख का यह अनुभव उस समय ओछा जान पड़ता है जब व्यक्ति अपने कार्यों-उपकारों का ढिंढोरा पीटता फिरता है। प्रेमचन्द ने जीवन की विभिन्न स्थितियों में मिलने वाले सुख के इन सभी अनुभवों का सविस्तार वर्णन किया है और सहानुभूति के विभिन्न रूप भी उनसे संबद्ध मिलते हैं। इसी प्रकार दुख, चिंता, कष्ट की सभी अवस्थाओं और रूपों की अपने उपन्यासों में उन्होंने व्याख्या की है। जन्म, त्योहार, संस्कार, विवाह आदि अवसर इतने शुभ और सुखद हैं कि सर्वथा साधनहीन व्यक्ति का हृदय भी प्रसन्नता से नाच उठता है। 'गोदान' में होरी के घर गाय आती है तो सारा परिवार निर्धनता के कष्ट भुलाकर अपार सुख का अनुभव करता है। 'कर्मभूमि' नें अमरकांत के पुत्र का जन्मोत्सव धनी के सुख से परिचित कराता है और 'गबन' में दयानाथ के पुत्र का विवाहोत्सव मध्यवर्ग वाले पस्तहिम्मत क्लर्क के हौंसलों का। दुखद अवसरों में प्रियजन की मृत्यु सबसे कष्टदायक होती है। प्रेमचन्द ने इस दुख का अत्यन्त करुणोत्पादक वर्णन किया है युवती रतन के पति वकील साहब की कलकत्ते में मृत्यु दिखा कर जहाँ वह 'अपने' के लिए विकल है पर कोई सहारा नहीं दिखाई देता। रतन-अकेली है, उसका अपना कोई नहीं है। इस लिए उसका दुख सम्मिलित परिवार की युवती के समदुख से कहीं अधिक दुखदायी है। इसी प्रकार अन्य दुखद घटनाओं का चित्रण करके जीवन में दुख की अत्यधिक प्रधानता से हमें परिचित कराया है।

अकेले (जैसे रमेश बाबू) का जीवन प्रेमचन्द ने दिखाया है, दुकेले (जैसे देवीदीन और जग्गो, रतन और वकील साहब और सम्मिलित परिवार (जैसे दयानाथ) का भी। घर के जीवन के

विशेषताएँ उन्होंने बताई है और परदेश की भी। निर्वासित तक को उन्होंने नहीं छोड़ा। रमा कलकत्त में भागा हुआ पड़ा है। क्या करे और कैसे करे की समस्या उसके सामने है। धन वह चाहता है पर कमाने का कोई साधन उसके पास नहीं है। पहले वह अखबार नहीं पढ़ता था; पिता ने दो-एक बार कहा भी तो उनकी तरफ घूरता रह गया। पर 'आज वह वाचनालय जरूर जाता है; अपने नगर और प्रांत के समाचारों के लिए उसका मन सदैव उत्सुक रहता है –पृ० १६०–।' निर्वासित व्यक्ति के मनोभावों के चित्रण से हमें लेखक की सूक्ष्मदर्शिता का परिचय मिलता है। रमा अब कम से कम पाँच हजार रुपये हाथ में आ जाने पर घर जाने की सोंचता है पृ० १६१–। 'गोदान' में गोबर भी इसी तरह घर से भाग कर लखनऊ आने पर अपनी हैसियत के अनुसार दो-तीन सौ लेकर घर लौटने का निश्चय करता है।

जीवन की एक विषमता यह है कि हमारे निकटतम सम्बन्धियों का भी स्वभाव हमारे से मेल नहीं खाता। घनिष्टतम परिचितों और सम्बधियों में स्वभाव की यही विपरीतता संघर्ष को जन्म देती है जिससे कथा का विकास होता है। प्रेमचन्द जी ने अनेक स्थलों पर इस तथ्य का सहारा कथानक के विकास के लिए लिया है। 'प्रतिज्ञा' में सास बहू के और 'गोदान' में मिस्टर खन्ना और उनकी पत्नी के स्वभाव परस्पर विरोधी हैं। 'गबन' में देवीदीन आलसी है निखट्टू है, चरस-गाँजे का पियक्कड़ है। बुढ़िया जग्गो, इसके विपरीत, काम के पीछे हाथ धोकर पड़ी है; सबेरे चार बजे से रात के बारह बजे तक जुटी रहती है। देवीदीन रमानाथ की दशा पर तरस खाकर रेल से उसका किराया देकर साथ लाया है; बुढ़िया को उसका घर में रहना

भी नहीं सुहाता; 'दूसरों पर रख कर श्लेषरूप में उसे सुना सुना कर दिलका गुबार' निकालती है।

अपनी हैसियत और पद के लोगों का सम्बन्ध मान-मर्यादा का चद्र क सिद्ध होता है; परन्तु जीवन में अनेक अवसर ऐसे भी आते हैं जब व्यक्ति अपनी संपन्नता का ध्यान छोड़ कर साधारण स्थिति वालों की संगत में सुख शांति पाता है। बराबर स्थिति में प्रतिष्ठा हो सकती है; परन्तु तकल्लुफ, दिखावा, ईर्ष्या और निन्दा का अभाव भी वहाँ नहीं रहता। निन्दा और इर्ष्या से तो मनुष्य को घृणा होना स्वाभाविक है; परन्तु दिखावे और तकल्लुफ से भी वह ऊब जाता है; उसकी चाह होती है कि किसी निष्कपट और सरल प्राणी की आडम्बरहीन छाया में शीतल शान्ति की साँस वह ले सके। सम्पन्न जीवन की यह तृष्णा इस बात की परिचायक है कि विगत जीवन में तृषित को सच्चे सुख का अभाव अवश्य रहा है। 'गबन' की रतन प्रतिष्ठित नागरिकों के घरानों से हेलमेल न बढ़ा कर निर्धन परिवार की वधू जालपा से बहनापा जोड़ती है; सम्बन्ध की घनिष्टता बढ़ाती है। कारण, यहाँ सम्पत्ति की बिलासिता और आडम्बर के स्थान पर प्रेम है, सहानुभूति है, सरलता है।

—०:-❀-:०—

चरित्र चित्रण

रमा, जालपा, रतन और देवीदीन इस उपन्यास के प्रधान पात्र हैं; रमेश, बुढ़िया और जोहरा अप्रधान। शेष केवल राह चलते दिखाई देते हैं जिन्हें उपन्यास के प्रमुख पात्र-पात्रियों से बात करते देख पाठक उनकी ओर देखता है। इसी समय वे अपना कार्य समाप्त कर चले भी जाते हैं। प्रमुख पात्रों के वचन और कर्म को व्यक्त कराते समय लेखक को बड़ी सावधानी से काम करना पड़ता है। विशेष स्थितियों में लेखक की असावधानी से पात्र के मुँह से निकली हुई एक आह अथवा माथे पर पड़ी हुई केवल एक सिकुड़न उपन्यासकार का सारा श्रम मिट्टी में मिला सकती है। ऐसे अवसरों पर प्रेमचंद जी ने बड़ी सतर्कता से काम किया है। रमा के चले जाने के पश्चात सास-ससुर दिन-रात जालपा को कोंच रहे हैं। एक दिन सराफों के तक़ाजों से परेशान होकर दयानाथ उसे डाँट बैठे —हजारों का कर्ज है। बाहर निकलना मुश्किल है। आज लाला साफ कहदिया कि मैं कुछ नहीं जानता; मैं किसी का देनदार नहीं हूँ। जाकर मेम साहब से माँगो। ससुर के कठोर शब्द सुनकर जालपा तिलमिला कर कहती है—जी हाँ आप उन्हें सीधे मेरे पास भेज दीजिए। रतन इसी समय आ गई आते ही उसने कंगन का जिक्र छेड़ा, मुझे बाजार से तुम्हारा-जैसा ही कंगन लेना है। जालपा मन ही मन कंगन बेचने का निश्चय कर लेती है। रतन को कंगन चाहिए और जालपा को रुपया; दोनों का काम हो गया। परंतु रतन आधा ही रुपया देने को तैयार है। इस पर भी जालपा ने दीनता का एक शब्द भी ऐसा मुँह से नहीं निकाला, माथे पर एक बल भी न पड़ने दिया जिससे घर का परदा

खुलता, ससुर का अपमान होता, उसी के आत्माभिमान को ठेस लगती या अपनी सखी के सामने इस विपत्ति में भी उसे दीन बनना पड़ता ; उलटे उसने चार बार यही जताया कि तुम्हारे स्नेह की रक्षा के लिए मैं कंगन बेंच रही हूँ । इस तरह कुल मर्यादा की रक्षा उसने कर ली और साथ ही रतन को कृतज्ञ भी बना लिया । साधारण स्त्री अपनी दीनता की कहानी कह कर चाहे रतनकी सहानुभूति अधिक पा लेती, परंतु पाठक की श्रद्धा खो देती । पिता दीनदयाल के सामने मायके जाने या किसी तरह की सहायता लेने से इन्कार करके उसने कुल-प्रतिष्ठा रक्षा और आत्माभिमान का दूसरा परिचय दिया है ।

एक गल्ती करने के पश्चात संकोच के कारण उसे स्वीकारने का जिसे साहस नहीं होता वे फिर बार बार भूलें करते हैं । एक छोटी सी बिगड़ी बात को बनाने के लिये उन्हें दस झूटों-सच्ची गढ़नी पड़ती हैं; यहाँ तक कि साधारण पाठक भी उनकी मूर्खता पर, जिसे पात्र-विशेष अपनी 'विवशता' समझता है, बार बार झुँझला जाता है । 'ग़बन' के नायक रमानाथ के चरित्र की जटिलता का यही रहस्य है । उसकी सबसे पहली भूल है नवविवाहिता पत्नी से अपने घर की सच्ची दशा छिपा कर आर्थिक स्थिति के सम्बन्ध में बहुत बढ़ बढ़ कर बातें करना २ दिन बाद ही सराफ के रुपए अदा करने का भयंकर प्रश्न सामने आता है । रमा में इस समय यदि स्त्री के सामने सारा कच्चा चिट्ठा कह सुनाने का साहस होता तो सारी स्थिति सम्हल जाती पर वह अपनी हाँकी हुई डींगों का भेद खुलने न देने के लिएचोरी जैसा निन्दनीय कर्म कर डालता है । इसके पश्चात इन दोनों को छिपाने के लिए चार और चारों की सत्यता सिद्ध करने के लिए दस झूठी बातें बनाता चला जाता है । लेखक के इस चरित्रचित्रण की विशेषता

यह है कि उसने बार-बार रमा की विवशता की व्याख्या ऐसे ढंग से दी है जिससे पाठक हर बार झुंझला कर भी रमा के प्रति सहानुभूति का भाव बनाए रखना चाहता है।

मनुष्य परिस्थितियों का दास है। निजी दुर्बलताएँ भी उसे दबाए रहती हैं। उस पर यदि इच्छाशक्ति की दृढ़ता उसमें न हुई तो फिर कुशल नहीं रहती। कठपुतली की तरह कभी तो वह परिस्थितियों के इशारे पर नाचता है और कभी दुर्बलताओं के। कभी कभी मनवोचित्त उदारता, जिसके वर्तमान रहने पर भी यदि हाथ तंग हो तो मनुष्य की प्रकृति संकोचशील हो जाती है, ऐसे कार्य उस से करा लेती है जिनके लिए मन न पहले से तैयार था और न अपनी वास्तविक स्थिति देखकर जिनका अब भी समर्थन करता है ? 'गबन' में रमा के सम्बन्ध में ये सभी बातें सत्य हैं। आर्थिक स्थित अच्छी न रहने पर भी मित्रों के सत्संग से फैशन की चाह और पैसा लुटाने की चाट, जिसका पूरा संबंध लापरवाही से है, उसमें ऐसी पड़ जाती है कि जो अन्दर ही अन्दर जड़ जमा लेती है और हाथ में पैसे आते ही वह इन दोनों के बंधन में जकड़ जाता है। विवाह के अवसर पर युवावस्था की उमंग का साथ पाकर परिस्थित रमानाथ से आवश्यकता और हैसियत से कहीं ज्यादा पैसा खर्च करा लेती है जिसका परिणाम यह होता है कि रमा को अपनी उसी भोली-भाली और विश्वासमयी पत्नी के गहने चुराने पड़ते हैं जो एक चंद्रहार के बिना रूठी बैठी है; मान कर रही है। लेखक इस परिणाम-द्वारा जैसे संकेत करता है कि यदि भविष्य में भी इसी प्रकार का रंग-ढंग बना रहा तो यही नतीजा सामने आयगा।

परंतु युवावस्था की प्रेममयी रसिकता हृदय की उदारता के संयोग

से इतनी प्रबल हो जाती है कि रमानाथ को चेतने नहीं देती। सौभाग्य से आमदनी की जगह पा जाने के कारण उनकी उदारता और भी बढ़ जाती है। दफ्तर में वह मित्रों के लिए खर्च करता है और घरपर सखियों-सहेलियोंके लिए जालपा। उधार दिन दिन बढ़ता जाता है, पर रमा को चुकाने की चिंता नहीं है; यदि चिंता होती भी तो उसके हाथ में दाम नहीं थे। इस तरह उनकी अनुभवहीनता क्लर्की जीवन का यह रहस्य उसे जानने नहीं देती कि बेचारे क्लर्क के भाग्य में इकट्ठी रकम बदी ही नहीं होती और अपनी प्रकृति के विरुद्ध कौड़ी कौड़ी जोड़ने पर ही वह रुपए बना सकता है। रमा रुपए भुनाना जानता है, बनाना नहीं। आगे चलकर उसकी रसिकता रूपवती पत्नी को शिक्षित और स्वच्छंद नारी समाज में ससम्मान अर्थात उन्हीं की तरह साज-शृंगार किए, ठाट-बाट बनाए, और पैसा खर्चने को हर समय तैयार, घूमने के लिए सप्रेम, सचाव और ससहयोग स्वीकृति देती है। मध्यमवर्ग की सीमित, नियमित, और अवृद्धिशील आय इतना बोझ सम्हाल नहीं पाती और अन्त में रमा को घर छोड़कर भागना ही पड़ता है।

प्रश्न है कि रमा की बार बार भूल पर पाठक को झुँझलाहट क्यों होती है? क्या वह मानवीय प्रकृति की उस दुर्बलता से अपरिचित है जो परिस्थिति की विवशता से जकड़ कर वित्त से बाहर काम उससे करा लेती है? अथवा लेखक द्वारा चित्रित रमा का चरित्र अस्वाभाविक है? वास्तव में बार बार रमा की भूल पर पाठक को झुँझलाहट इसलिए होती है कि वह उन सभी कार्यों को आवश्यक समझता है जिनके पीछे रमा ने अपनी हैसियत से ज्यादा काम करने में अपनी शान समझी है। पाठक बार बार चाहता है कि रमा

अब भी चेत जाय; दूरदर्शी और बुद्धिमान बने; पर उसकी यह इच्छा पूरी नहीं होती। इस संबंध में प्रेमचंद जी के चरित्र-चित्रण की सब से बड़ी विशेषता यह है कि उपन्यास के आदि से अन्त तक पाठक की पूर्ण सहानुभूति नायक रमानाथ के साथ ही रहती है; उसको सुख में देख कर वह स्वयं पुलकित हो उठता है और दुख से उसे चिंतित या पीड़ित देख कर विकल हो जाता है।

प्रेमचन्द की चरित्रचित्रण कला बिलकुल सीधी सादी है। उनके पात्र अवस्था और स्थिति के अनुसार कार्य कर जाते हैं और इसके पश्चात पुरुष अथवा स्त्री प्रकृति के मनोवैज्ञानिक सिद्धांतों की व्याख्या करके वे सिद्ध करते हैं कि अमुक स्वभाववाला पात्र ऐसी स्थिति में यही कार्य करता। एक उदाहरण से लेखक का यह ढंग स्पष्ट हो जायगा। पति की नौकरी लग जाने के बाद जब तीन महीने तक जालपा के लिए कोई आकर्षण नहीं बचता तब वह सोचती है कि पति को मेरी परवाह नहीं है जन्माष्टमी के उत्सव में जब उसे अकेले छोड़ कर घर के सभी लोग चले जाते हैं तब जालपा को जान पड़ता है, मानों घर भर में किसी को मेरी परवाह नहीं है दुख के इस आवेश में अपनी दयनीय दशा का हाल वह सखियों को लिख भेजती है। उसके इस कार्य की 'स्वाभाविकता' लेखक ने इस प्रकार सिद्ध की है—मित्रों से अपनी व्यथा कहते समय हम बहुधा अपना दुख बढ़ा कर कहते हैं। जो बातें परदे की समझी जाती हैं उनकी चर्चा करने से एक तरह का अपनापन जाहिर होता है। हमारे मित्र समझते हैं, हमसे जरा भी दुराव नहीं रखता और उन्हें हमसे सहानुभूति हो जाती है। अपनापन दिखाने की यह आदत औरतों में कुछ अधिक होती है—पृष्ठ ५८।

एक बात और। 'गबन' की कथा के स्थूल रूप से दो भाग किए

जा सकते हैं—(१) रमा का सपत्नीक गार्हस्थ्य जीवन और (२) उसका प्रवास-काल। प्रथम का नायक रमा है और द्वितीय की नायिका जालपा पहले भाग में लेखक ने रमा के स्वभाव आचरण की व्याख्या में जितनी एकाग्रता से काम लिया है, उतना ही भाग—बल्कि उससे भी कहीं ज्यादा—प्रवास-काल में जालपा के चरित्र-चित्रण के लिए सुरक्षित रक्खा है।

रमानाथ

नई रोशनी का दिलदार युवक, जिसे फैशन की चाह है, खाने खिलाने, ओढ़ने-पहनने का शौक है, आर्थिक स्थिति जिसकी अच्छी नहीं है जिसके फलस्वरूप बाहर की जरूरतें मित्रों के सहारे जो पूरी करता है; और घर में आशा से कहीं अधिक सुन्दरी पत्नी पाकर अपना भाग्य सराहता है, उसकी प्रसन्नता के लिए कोरी डींगें हाँक कर अपनी शान जमाए रखना चाहता है, यही रमा 'गबन' नामक उपन्यास का नायक है। अपने चरित्र की महत्वाकांक्षा, आडंबर से प्रेम, डींग हाँकना, झूँठ बोलना और सब से बढ़ कर आधुनिक शिक्षा से प्रभावित होकर, फैशन अपनाने के कारण, इस दृष्टि से, वह 'प्रेमाश्रम' के ज्ञानशंकर का छोटा भाई जान पड़ता है। दोनों के स्वभाव और चरित्र में जो अन्तर है उसका प्रधान कारण दोनों की परिस्थिति अथवा पद का अन्तर ही समझा जायगा। ज्ञानशंकर देहात के वातावरण में पला हुआ ऐसा युवक है जिसके मन में जमींदारी की ठसक बनी है और रमानाथ शहर के शिक्षित वातावरण में अपने दिन बिताने वाला कालेज का ऐसा छात्र है जिसने फैशन करना सीखा है, दिन रात गप्पें लड़ाना और डींग हाँकना सीखा है और जो घर की आर्थिक परिस्थिति से परिचित होते

हुए भी, उस सम्बन्ध में कभी दो मिनट न सोचने के कारण, अपरिचित है। कालेज के विद्यार्थियों के और भी कुछ चित्र प्रेमचन्दजी ने खींचे हैं पर शायद उनके उपन्यासों में रमानाथ से मिलता-जुलता दूसरा चित्र नहीं। 'प्रेमाश्रम' के ज्ञानशंकर से यद्यपि किसी सीमा तक, उक्त बातों में उसका चरित्र कुछ मिलता अवश्य है पर हमारे विद्यार्थियों के लिए उपयोगिता की दृष्टि से 'गबन' के नायक का चरित्र अधिक मूल्यवान है कारण अधिकांश विद्यार्थी उसी का अनुकरण किया करते हैं।

ग्रन्थ के आरम्भ में ही लेखक ने रमानाथ के कार्य-कलाप, व्यवहार, रहन-सहन और वेश-भूषा आदि के सम्बन्ध में जो बातें लिखी हैं उनसे वर्तमान युग के शिक्षित विद्यार्थी का पूर्ण परिचय मिल जाता है। आधुनिक विद्यार्थियों से सभी परिचित हैं। अतः प्रेमचन्दजी चित्रित विद्यार्थी के चित्र से तुलना करके इस कथन की सत्यता का निर्णय कर सकते हैं—

इधर दो साल से वह बिल्कुल बेकार था। शतरंज खेलता, सैर-सपाटे करता, माँ और छोटे भाइयों पर रौब जमाता। दोस्तों की बदौलत शौक पूरा होता रहता था। किसी का चेस्टर माँग लिया और शाम को हवा खाने निकल गये। किसी का पंप शू पहन लिया, किसी की घड़ी कलाई पर बाँध ली। कभी बनारसी फैशन में निकले, कभी लखनवी फैशन में। दस मित्रों ने एक-एक कपड़ा बनवा लिया तो दस सूट बदलने का साधन हो गया—पृष्ठ ७—।

यह चित्र हम नित्य देखते हैं—घरों में, बाजारों में, मेले-तमाशों में, सभी जगह; बनावट का इसमें नाम नहीं है। कालेज के विद्यार्थी यदि ध्यान से देखें तो शायद धोखा खा जायँगे कि कहीं यह

उन्हीं को लक्ष्य करके तो नहीं लिखा गया है पर यह चित्र नहीं, उसकी व्याख्या है। हूबहू फोटो इन पंक्तियों में मिल जायगा—

रमानाथ टेनिस-रैकेट लिए बाहर से आया। सफेद टेनिस-शर्ट पर सफेद पतलून, कैनविस का जूता। गोरे रंग और सुन्दर मुखाकृति पर रईसों की शान पैदा कर दी।

प्रेमचन्दजी ने इन पंक्तियों में एक और संकेत कर दिया है जो उपन्यास के कुछ पृष्ठ पढ़ने के बाद हमारी समझ में आता है। वह यह कि रमानाथ के पिता दयानाथ की आर्थिक दशा अच्छी नहीं है। वे ५०) मासिक पैदा करते हैं। जगह आमदनी की अवश्य है पर झूँठ, चालाकी और रिश्वत से अपनी आमदनी बढ़ाना वे बड़ा ही अनुचित समझते हैं। फल यह होता है कि ५०) में उनके घर का काम नहीं चलता और जब वे धूम धाम से अपनी नाक बचाने और बिरादरी को उँगली उठाने का मौका न देने के लिए अपने पुत्र का विवाह करते हैं, तब उन्हें दो हजार का देना हो जाता है। पर रमानाथ को इन बातों—पिता घर का काम किस प्रकार चला रहे हैं, उन्हें क्या ऋण देना है, वह किस तरह चुकाया जायगा, पिता ऋण की चिन्ता में किस तरह घुल रहे हैं आदि—से कोई सरोकार नहीं। उसे यदि किसी बात से मतलब है तो अपने सैर-सपाटे से, ताश-शतरंज से, फैशन से। हमारे कालेज के विद्यार्थी हृदय पर हाथ रख कर सोचें, क्या वे रमानाथ की तरह घर की स्थिति से अपरिचित नहीं हैं? क्या वे घर की स्थिति देखकर फैशन करते हैं। हमारा अनुमान है कि मध्यम श्रेणी के अधिकांश विद्यार्थी इस सम्बन्ध में अपने को दोषी ही पाएँगे।

यह सत्य है कि युवावस्था में सुख से खाने पीने। सैर-सपाटे

करने और निश्चिन्त होकर मौज उड़ाने की इच्छा होती है। पर साथ ही यह भी तो सत्य है कि घर की स्थिति की ओर से आँखें मूँद कर और दूसरों से ऋण लेकर अपना खर्च बढ़ाना—पिता पर एक और बोझ डालना—हमारे लिए अनुचित है, हानिकर है। युवक प्रायः अपनी युवावस्था के उन्माद में यह बात नहीं समझते, कभी-कभी सुझाने पर भी इस ओर ध्यान नहीं देना चाहते। भविष्य की उन्हें कोई चिंता नहीं रहती। रमानाथ भी एक युवक है। वह मनमाना खाता है, मनमाना उड़ाता है, सैर-सपाटे की चाट भी उसे लग गयी है और फैशन करना तो उसके लिए जीवन की 'आवश्यकता' हो गयी है। स्त्री के सामने अपनी स्थिति के विषय में गप्पें हाँकने में वह कम नहीं है—मेरा इतना रुपया अमुक बैंक में जमा है, इतना धन किराए का आता है, इतना यहाँ है, इतना वहाँ, यह है वह है। रमाकान्त यही सब सुना कर अपनी युवती स्त्री को वश में करना चाहता है, उस पर धाक जमाना चाहता है और उसे विश्वास दिला देना चाहता है कि उसकी किसी भी आवश्यकता की पूर्ति; गहने कपड़े, और शृंगार के सामान की खरीदारी क्षणभर में, केवल आँख के इशारे पर की जा सकती है। भाग्य से कचहरी में उसे अच्छी ऊपरी आमदनी की जगह मिल जाती है। यहाँ भी अपनी 'शाहखर्ची के कारण तीन चार महीनों में वह सौ से ज्यादा नहीं बचा पाता और इतने में छोटे से छोटा गहना भी नहीं बन सकता। जालपा उसकी इस उदासीनता से ऊब कर-अपनी सखियों को पत्र लिखती है—मुझसे वादे तो रोज किए जाते हैं, रुपये जमा हो रहे हैं, सुनार ठीक किया जा रहा है। डिजाइन तय किया जा रहा है; पर यह सब धोखा है और कुछ नहीं। चोरी से चिठियाँ पढ़कर रमा की आँखें खुलती हैं!

साढ़े छः सौ उधार करके वह दो आभूषण लाता है। उन्हें पाकर जालपा के मनोल्लास की यद्यपि कर्ज की चिन्ता के कारण यह मनोल्लास विशुद्ध नहीं है, सीमा नहीं रहती। आभूषण पाकर पत्नी के 'पति-स्नेह' में सेवा-भाव का उदय होता है और प्रियतमा के इस 'मधुर-स्नेह' के सामने रमा को वे दोनों गहने बहुत ही तुच्छ जंचते हैं। और प्रेमावेश में छः सौ का ऋण वह और कर लेता है। कुछ हो रमा की झूठी बातों का और छ इस प्रकार बढ़ावा देने का फल यह हुआ कि स्वयं रामनाथ का हाथ तो खुला था ही, उसकी युवती स्त्री भी मनमाना धन लुटाने लगी। वह देहात में पली बालिका अब अपने पति को धनी समझ कर शृंगार के मनमाने सामान की फरमाइश करने लगी, सैरसपाटे को भी तैयार हो गयी. घर में भी साड़ी की आवश्यकता का अनुभव करनेलगी और अन्त में पार्टियों में जाने और धनी घर की स्त्रियों को पार्टी देने का उसे चसका लग गया। इन सब बातों का फल यह हुआ कि रामनाथ पर गहने वालों का ही इतना ऋण चढ़ गया कि चुका न सकने के कारण एक दिन स्थिति खुल जाने और स्त्री तथा अन्य सम्बन्धियों के सामने लज्जित होने के भय से वह घर छोड़ कर भागने पर विवश हो गया।

भविष्य की ओर से आँख बन्द करके मन माना खर्च करते रहने पर होने वाले इसी भयंकर और अप्रिय परिणाम की ओर प्रेमचन्दजी ने अपने इस उपन्यास में संकेत किया है। यह संकेत कल्पित नही है और हम अपने जीवन में प्रायः ऋण लेने वालों को ऐसा ही कष्ट भोगते देखते हैं। यह दूसरी बात है कि उन में से बहुत से लोग घर से भागने की आवश्यकता न समझें अथवा इसकी नौबत ही न आए; पर इतना निश्चित है कि उन्हें रामनाथ की तरह ही कष्ट उठाना और

समाज के सामने लज्जित होना पड़ता है। रमानाथ इतना सस्ता नहीं छूट जाता। घर से भागने पर वह पुलिस के हाथ में पड़ जाता है। वहाँ झूँठ बुलवाने के लिए उसे तरह-तरह की धमकियाँ और प्रलोभन दिये जाते हैं। पुलिस के हाथ की कठपुतली बन कर जब वह अनेक निरपराध व्यक्तियों के विरुद्ध गवाही देने पर विवश किया जाता है तब उसकी बड़ी निन्दा होती है। पर अन्त में प्रेमचन्दजी, उपन्यास का कथानक सम्हालने के लिए उसकी स्त्री की विशालहृदयता और महत्ता दिखा कर उसी के द्वारा रमा का उद्धार करवा देते हैं।

'गबन' ही नहीं प्रेमचन्दजी के अन्य उपन्यासों को भी पढ़ने पर ज्ञात होता है कि वे नवयुवक पात्रों के चरित्र का चित्रण करते समय सदैव विशेष सावधान रहे हैं। रमानाथ के विषय में भी यही कहा जा सकता है। मनोवैज्ञानिक विश्लेषण करने पर रमानाथ का बार-बार मूर्खता दिखाते जाना हमें कुछ अस्वाभाविक-सा लगता है। परन्तु इसका उद्देश्य बड़ा पुनीत है। युवकों में जो दोष आ जाते हैं, प्रायः उनका कारण सांसारिक अनुभवों का अभाव होता है। जो व्यक्ति सांसारिक बातों से परिचित हैं उनका यह कर्त्तव्य है कि अपने देश के नवयुवकों को उनके मार्ग में आने वाली बाधाओं और कठिनाइयों से समयानुसार सचेत करते रहें। 'गबन' में रमानाथ के चरित्र का चित्रण करके प्रेमचन्दजी ने यही महत्वपूर्ण कार्य किया है!

रामनाथ के चरित्र के सम्बन्ध में ऊपर जो कुछ विवेचना की गई है उससे यह न समझ लेना चाहिए कि लेखक ने उसमें दोष ही दोष दिखाए हैं। पति की दृष्टि से वह आदर्श है और जालपा अगर माँगती तो प्राण तक उसके चरणों पर रख देता, रुपए की हकीकत ही क्या थी—पृ० ७३। और सब तरह से असन्तुष्ट रहनेवाली उसकी

स्त्री भी स्पष्ट रूप से उससे कह देती है कि ऐसे पति को पाकर वह अपने को बड़ी सौभाग्यवती समझती है। सहृदय और रसिक होने के साथ-साथ वह स्वार्थी भी नहीं है।

मातृभक्ति का उदय भी उस में होता है। मध्यम वर्ग की स्त्री होने के नाते गृहस्थी की चिंताग्नि में माता ने किस प्रकार अपनी प्रिय लालसाओं को एक-एक करके होम कर दिया है, इस से वह अपरिचित नहीं और इसीलिए अपनी त्यागमूर्ति माता को, जिस में चिर-संचित अलंकार-प्रियता को दबा लेने की दृढ़ता नहीं है और आवेश में कंगन उठाकर हाथों में जो पहन लेती है—यद्यपि इसके प्रकट होने का ओछापन उसे खटकता अवश्य है—रमानाथ आदर्श पुत्र की तरह अपने सिर पर भारी बोझ करके भी कंगन भेंट करना कर्तव्य समझता है।

सारांश यह कि रमा औसत दर्जे का युवक है जिस में उन्नति करने की किसी प्रकार की धुन, कोई चाह, जीवन का कोई आदर्श कुछ नहीं है पिता जब तक पढ़ाते रहे, पढ़ लिया। पिता ने जिस दिन जवाब दे दिया कि मेरी समाई नहीं है अपने पुरुषार्थ से पढ़ना हो तो पढ़ो। उसी दिन कालेज में दो महीने से लिखा नाम कटा कर पढ़ना छोड़ बैठा और दो साल तक बिलकुल बेकार रहा। अनेक शिक्षित युवक अपनी स्थिति को अधिक अच्छी दिखाने के फेर में पड़कर डींग हाँका करते हैं। रमा भी इसी वर्ग का है। प्रथम परिचय में ही उसने नवविवाहिता पत्नी से बढ़ा चढ़ा कर बातें की हैं। इसी तरह कोई ऐसा मित्र न था जिससे उसने बढ़-बढ़ कर बातें न की हों। यह उसकी आदत थी। 'घर की असली दशा को वह सदैव बदनामी की तरह छिपाता रहा'—पृ० ३१। रमेश बाबू से भी उसने अपनी स्थिति छिपा

रही है; तभी तो वे कहते हैं—दसबीस हजार रुपए तुम्हारे पिता के पास होंगे, तो अभी दो-दो बच्चे भी तो उनके सामने हैं—पृ० ३६।

चरित्र की इन्हीं दुर्बलताओं के कारण रमा जीवन भर पछताता है और अन्त में उसका उद्धार करती है न तो जालपा, पुरुष को प्रेरक शाली, उसकी प्रकृति, नारी जाति के प्रति कितने सम्मान का यह संकेत है!

कला की दृष्टि से देखने पर हमें उसका चरित्र-चित्रण सफल मालूम होता है। दोषी वह चाहे जितना हो, पर परिस्थितियों के कारण विवश हो गया है। वह झूँठ बोलता है, चोरी करता है, सम्बन्धियों को रोते छोड़ कायर की तरह भाग खड़ा होता है फिर भी हम उससे घृणा नहीं करते। कभी-कभी हम उसकी मूर्खता पर झुँझला अवश्य उठते हैं पर हमारी सहानुभूति उसी के साथ रहती है। युवक होने के कारण उसे यह ज्ञात नहीं होता कि (जालपा के शब्दों में) लालसा की तृप्ति नहीं होती, पर यह अनभिज्ञता ही उसके चरित्र-चित्रण को सफल और स्वाभाविक बनाती है।

जालपा

बिल्लौर का झूठा चमकदार हार पाकर 'बड़ी बड़ी आँखों वाली' प्रसन्न और उछलती-कूदती जिस बालिका को हम स्नेह भरी आँखों से देखते हैं, पिता जिसके लिए कभी खिलौने और गुड़िया न लाकर आभूषण लाते और इस प्रकार परोक्ष रूप से उसके मन में भारतीय स्त्रियों के स्वाभाविक आभूषण-प्रेम को उत्तेजित करते रहे, माता का नया चंद्रहार देख, ससुराल से उसके आने का आश्वासन पाकर जिसे संतोष करना पड़ता है, उस सरल हृदया से हमारा प्रथम परि-

चय लेखक ने उस 'शुभ' दिन कराया है जब उसकी 'चिरसंचित अभिलाषा पूरी होने' की आशालता पर तुषारपात होता है। चढ़ावे में चंद्रहार न पाकर 'उसके कलेजे पर चोट-सी लगती है, मालूम होता है, 'देह में रक्त की एक बूँद भी नहीं है।' चंद्रहार उसके लिए देह की एक आँख' है जिसके न होने से शरीर के सब अंग व्यर्थ जान पड़ते हैं।

आभूषण-मंडित्त संसार में पत्नी जालपा का आभूषण-प्रेम स्वाभाविक' सिद्ध करने के पश्चात लेखक उसके सामने वह दुखद अवसर लाता है जब उसके सारे गहने चोरी चले जाते हैं। ससुराल उसकी निर्धन है, पर पति मिला है मन का धनी। उत्साही और रसिक युवा पति से जालपा को कोरे वादे मिले। अब तक जालपा ने अपने सारे गहने इसलिए न पहने थे कि वह चन्द्रहार चाहती थी। कुछ तो परिस्थिति की विवशता से और कुछ अपनी मूर्खता से उसके पति को महाजन का ऋण चुकाने के लिए स्वयं अपनी पत्नी के गहनों का चोर बनना पड़ा। आभूषणों पर जान देने वाली जालपा के लिए अब दिन रात का रोना हाथ रहा। पति ने उसे धैर्य अवश्य दिया; पर वह मौखिक सहानुभूति थी। अंत में, एक दिन रमा अपनी प्रिय पत्नी का दुख दूर करने के लिए उधार गहने ले आया। जालपा उन्हें देखकर फूली समाई, यद्यपि उसे यह मालूम था कि ये गहने उधार आए हैं। इसे नालपा के चरित्र का अवस्थाजनित दोष कह सकते हैं।

आठ स. कर्ज करने के पश्चात जालपा के 'पति-स्नेह में सेवा-भाव का उदय हुआ।' अब वह पति को सुखी और प्रसन्न देखने के लिए विशेष उत्सुक है; खाने-पीने पहनने-ओढ़ने की सभी सुविधाएँ

अब उसने पति के लिए सुलभ कर दी हैं। परंतु अलंकार-लिप्सा उसकी अभी संतुष्ट नहीं है। पति पर लम्बा ऋण देख कर भी वह दो आभूषण और ले लेती है। 'नई जवानी है, नया जोश है। 'रूप-लावण्य है और शील-विनय भी। खेलने-खाने के ये ही दिन हैं; इस विचार ने उद्दीपन का काम किया। संग-साथ बढ़ने लगा। अब जालपा का कंठ स्वर इतना कोमल, भाषण इतना मधुर, छवि इतनी अनुपम है कि अपनी मंडली में वह रानी-सी जान पड़ती। उसके आने से मुहल्ले के नारी-जीवन में जान-सी पड़ गई—पृष्ठ ७३—। उस पर 'उदार हृदय इतनी कि मंडली के पान-पत्ते, सेवा-सत्कार, किराया भाड़ा और जलपान का खर्च उसी के मत्थे होता'—पृष्ठ ७३—। आफिस में रमा खूब खर्च करता और घर पर जालपा। 'दोऊ हाथ उलीचिए' का क्रम अपनी गति से आरम्भ हो गया।

तात्पर्य यह कि सैर-सपाटा; खेल-तमाशा, नाच रंग, सिनेमा-थियेटर-जैसे लौकिक सुख और विलास की सभी सुविधाएँ अब जालपा को सुलभ हैं। रमा आदर्श पति की तरह उसे प्रत्येक बात में सहारा और बढ़ावा दे रहा है दोनों एक दूसरे का हाथ पकड़े मुग्ध दृष्टि से अपने प्रिय सहचर की ओर ताकते हुए अथाह जल में बढ़ते जाते हैं। रमा इस समय भयभीत है। ऋण के भय से, तकाजों के डर से, रतन के रुपए न देने पर अपमानित होने की आशंका से और सरकारी रकम अदा न करने पर जेल जाने की रोमांचकारी कल्पना से बार बार सिहिर उठता है। मुख उसका विपर्ण हो रहा है, हँसी ग्लान है, आँखें उसकी जब सोचने के लिए दिन में मंदी और रात में खुली रहती हैं। परंतु जालपा की मादकता भरी विलासी-वृत्ति क्षण भर से अधिक उसे सचेत नहीं होने देती। दो-एक बार

उसने दबी जबान से यह जानने की इच्छा अवश्य की तुम गुमसुम से क्यों हो, कौन सी चिन्ता तुम्हें सता रही है, मुझसे अपनी बात अपना भेद क्यों छिपा रहे हो; पर जालपा के इन प्रश्नों में पति के सुख-दुख को सहभागिनी बनने की सदिच्छा इतनी प्रबल नहीं है जितनी यह बात जानने की अभिलाषा कि तुम मुझे कितना चाहते हो, कितना प्रेम करते हो, करते भी हो या नहीं। जालपा और रमा दोनों की विवेक-बुद्धि पर युवावस्था के मद का परदा पड़ा है। अदूरदर्शियों की भाँति अतीत और भविष्य, दोनों की ओर से उन्होंने आँखें मूँद ली हैं और चौंकते वे उस समय हैं जब पानी नाक तक पहुँच जाता है उबरने का उपाय समझ में नहीं आता और पैर उखड़ जाते हैं। घबड़ा कर जालपा पति के और अपने बचाव के लिए उससे लिपट जाना चाहती है; परन्तु रमा स्वयं संकोच और भय से पत्नी का हाथ झिड़क, आँख बचा, मुँह छिपा, गोता मार कर दूर निकल जाता है।

रमा के घर से भागने पर जालपा सचेत होती है; उसकी कर्म-बुद्धि जाग्रत होती है। दफ्तर में पति के नाम निकलने वाला हिसाब जमा करने के लिए अपना हार बेंचकर उसने तुरत, बुद्धि का परिचय दिया। सराफों के तकाजों से ऊब कर कोंचनेवाले ससुर दयानाथ के हाथ में रुपए देने के लिए रतन के हाथ, अपना सर ऊँचा रखकर,—अपनी दयनीय स्थिति की कहानी उसे न बताकर—उल्टा अहसान जता कर, कंगन बेचना और पिता दीनदयाल के साथ मायके न जाकर, उनकी किसी भी सहायता को सविनय अस्वीकार कर देना, जालपा के उस आत्माभिमान का सुन्दर परिचय देने वाली दो बातें हैं, जिससे बहुत पहले ही माता का भेजा हुआ चन्द्रहार लौटवा कर

लेखक हमें परिचित करा चुका है। रमा को पाने के पहले उसे केवल गहनों की चाह थी। रमा को पाकर वह निहाल हो गयी; परम सुख-संतोष का उसने अनुभव किया। उसकी तीन सहेलियाँ हैं और पति के नाते तीनों दुखी हैं; परन्तु जालपा को पति रमानाथ से सब कुछ मिला और आशा से अधिक। सुख की इस अधिकता ने उसे भुलावा दिया, युवावस्था की दुर्बलता ने मोहित करके उसे विलासिता में फँसा लिया; और रमा को साथ लिए सारे समाज में वह अपनी प्रसन्नता लुटाती फिरती। परन्तु आज उसी को खोकर वह मोह से जागती है; विलासिता के बन्धन से मुक्त होने को प्रस्तुत होती है। फैशन और विलास की उन सभी वस्तुओं—मखमली स्लीपर, रेशमी मोजे, तरह तरह की बेलें, फीते, पिन, कापियाँ, आइने आदि—का संग्रह करके वह एक दिन नदी में प्रवाहित कर देती है जो उसके सर्वनाश का—प्राणप्रिय पति को उससे विलग करने का—मूल कारण थीं। भौतिक सुख-लिप्सा की तुच्छ परंतु लुभावनी भावना पर इस महत्वपूर्ण विजय के पश्चात जालपा के नए जीवन का सूत्र-पात होता है। सेवा, त्याग, करुणा, सहानुभूति आदि पवित्र भावनाओं का उसके हृदय में वेग से संचार होता है और वह कर्मपथ पर आगे बढ़ने को प्रस्तुत होती है।

दुर्भाग्य से जालपा का पति पुलिस के हाथ में पड़ जाता है और झूठी गवाही देने पर मजबूर किया जाता है। रमानाथ यह काम इस लालच से स्वीकारता है कि उसे कोई ऊँचा पद मिल जायगा और जालपा के साथ वह सुख से जीवन बिता सकेगा। पता लगने पर जालपा उसके इस काम से घृणा करती है। पति को एक पत्र में उसने स्पष्ट लिख दिया—मुझे धन की परवाह नहीं है; मैं तुम्हें

चाहती हूँ। ईमानदारी से यदि तुम चने भी कमा कर लाओगे तो सुख से रहूँगी; पर बेगुनाहों के खून से तर माल खाना मुझे मंजूर नहीं है। झोपड़े में रह सकती हूँ; पर बेईमानी से कमाए हुए महल में नहीं। जिस दिन तुम ऐसे पाप करोगे, मैं प्राण दे दूँगी।

ये शब्द तो प्रेमचंद जी के नहीं हैं; पर भाव उन्हीं का है। यही इस भारतीय नारी के विचार हैं जो अपने पति को 'किसी भी' तरह से धन लाने के लिए राजी न करके इस लिए मजबूर करती है कि रूखा-सूखा कुछ भी लाओ, पर लाना चाहिए ईमानदारी से ही; टूटे-फूटे झोपड़े में रहो; पर निर्धनों को सताकर महलों में रहना उचित नहीं। निर्धन पति को त्यागन का विचार मन में न लाकर वह सोंचती है कि किसी तरह निर्धनता में भी इनके सामने प्रसन्न रहूँ जिससे ये मेरे दुख से दुखी न हों। पति के पापों के लिए वह इसे फटकारती नहीं, स्वयं उनका प्रायश्चित करने के लिए सहर्ष प्रस्तुत होती है।

रमानाथ की झूठी गवाही से जो घर बरबाद हुए, ज़ालपा की हार्दिक सहानुभूति उन सभी के साथ है और दिनेश के घर जाकर तो वह दिन भर उसके बच्चों की सेवा करती है, घर भर में झाड़ू देती है; पानी भरती है, बर्तन माँजती है, चंदा इकट्ठा करती है। पति के पापों का प्रायश्चित करने वाली यह भारतीय नारी पाठक की दृष्टि में इस समय कितना ऊपर उठ जाती है। सम्मिलित परिवार में एक के कामों का भला-बुरा परिणाम दूसरों को भुगतना पड़ता है; फिर रमा और जालपा तो पति-पत्नी हैं; अभिन्न हैं। रमा ने जो अपराध किया उसके मूल में जालपा की आभूषण लिप्सा थी, वह पति को अंधा बनाकर पतन के गर्त में गिरने के लिए अनजान की तरह उत्साहित

करती रही। आज यह हिन्दू नारी उन पूर्व पापों का प्रायश्चित करती है जिनके कारण भ्रम में पड़े पति ने ऊँचा पद पाकर पत्नी को सुखी देखने के लोभ में निरपराधों को दण्ड दिलाने के लिए पुलिस के इशारे पर झूठा बयान दिया। आज सचेत होकर जालपा ने दिनेश के घर वालों की सेवा करके जिस सहनशीलता का परिचय दिया है, उसकी महत्ता का अनुमान केवल इसी से किया जा सकता है कि वेश्या जोहरा तक उसके संपर्क में आने पर अत्यंत प्रभावित होकर क्षमा, त्याग और प्रेम की मूर्ति बन कर लौटती है।

सेवा सहानुभूति का जो आदर्श जालपा ने उपस्थित किया है वह दैवी नहीं मानवीय ही है और इसलिए यह नारी देवी नहीं मानवी है। अनेक गुणों के साथ उसमें दोप भी हैं। 'ऊपर से फूल होने पर भी वह भीतर से पत्थर है, इतनी नाजुक होकर भी वह इतनी मजबूत है। जिस जोहरा ने जालपा के संबंध में ये विचार प्रकट किये हैं, उसी से उस नारी ने अपनी निर्बलता को कहानी भी कही है—बहन, मैं खुद मरजाऊँगी, पर उनका अनिष्ट मुझसे न होगा। न्याय पर उन्हें भेंट नहीं सकती। अपनी इस दुर्बलता को निभाकर ही नारी समाज में जालपा प्रतिष्ठित पद की अधिकारिणी हो सकी है।

देवीदीन

सरल, निष्कपट और परोपकारी प्राणी। जाति का खटिक शाक-भाजी का दूकानदार। बद्रीनाथ की यात्रा से धर्म और भक्ति का परिचय देता है। हृदय का वह दयालु है, प्रेमी है। सभ्यता के नाम पर मौखिक सहानुभूति के थोथे शिष्टाचार का पाठ उसने अपने बचपन में नहीं सीखा। इसलिए उसका दया धर्म का व्यवहार केवल दिखाने

का नहीं है किसी भी विपदाग्रस्त राही की सहायता को वह प्रस्तुत है। बिना जान-पहचान के ही रमा का रेल-भाड़ा वह देता है। सरल-हृदय होने के साथ ही वह इतना हंसोड़ और प्रसन्नचित्त है कि सभी आश्चर्य करते हैं। दुनिया देखने-सुनने का उसे काफी मौका मिल चुका है। लगभग पचीस वर्ष की अवस्था में वह घर से भाग कर हवड़ा गया था। तब से अपने हाथ 'पैर से काम करता है और इस समय पंद्रह-बीस हजार का आदमी है। दिनचर्या इसकी विचित्र है; दिन भर चिलम पीना और गप्पें लड़ाना। थोड़ी-सी हिन्दी जानता है; बैठा बैठा रामायण, तोता-मैना का किस्सा रासलीला या माता मरियम की कहानी पढ़ा करता है। रमा से परिचय होने पर बुड्ढे को अँगरेजी पढ़ने का शौक़ हुआ। सबेरे ही प्राइमर लेकर बैठ जाता और नौ-दस बजे तक पढ़ता रहता। बीच बीच में लतीफे भी होते, वह कहता—'पराइमर' का मतलब है पराई स्त्री मर जाय। मैं कहता हूँ, हमारी-मर। पराई के मरने से हमें क्या सुख—१६७।

देवीदीन राष्ट्रीयता के रंग में रँगा सच्चा भारतीय है। स्वतंत्रता की वर्तमान युद्धाग्नि में दो जवान बेटों की आहुति देने के पश्चात 'छाती के गज भर चौड़ी हो जाने का अनुभव कर चुका है। सुदेसी का इतना भक्त है कि राष्ट्रीय-आन्दोलन के आरंभ से विदेशी दियासलाई तक घर में नहीं लाया। देशी वस्त्रों में ज्यादा पैसा लगाना उसे स्वीकार है; पर विदेशी कपड़े सस्ते खरीद कर देश का धन बाहर भेजना उसे किसी तरह सहन नहीं। स्थिति का ज्ञान इसको काफी है और वह जानता है कि बड़े आदमियों के किये देश का उद्धार नहीं हो सकता; क्योंकि गरीबों के लिए उनके दिल में जगह नहीं होती। सेठ करोड़ीमल जैसे पूँजीपतियों की दोहरी चालों से वह अपरि-

चित नहीं है; उनकी नस नस पहचानता है। 'वह शेखीबाजों में नहीं है। मुँह से जो कहता है उसे पूरा कर दिखाने की सामर्थ्य रखता है—१७१। रमा को छुड़ाने के लिए पचास अशर्फियाँ झपट कर ला देता है और दारोगा को वादाखिलाफी करते देख बुरी तरह फटकारता है। सारांश यह कि नीची समझी जाने वाली जाति के इस बूढ़े व्यक्ति में सभ्य समाज के वे अनेक सद्गुण पायेजाते हैं, जिनके कारण व्यक्ति बड़ा या महान समझा जाता है।

खटकनेवाली बातें

१ विवाह के पूर्व चंद्रहार की बात लेकर जालपा की सखियों का वार्तालाप सरस नहीं हो सका। शहजादी की कृत्रिम सहानुभूमि भी अधिक रोचक नहीं बन सकी है।

२ पुत्रों की मृत्यु के पश्चात जालपा ही मुख्तार दीनदयाल की इकलौती कन्या है जिसे उन्होंने बड़े लाड़-प्यार से पाला है। खाने-पहनने के सभी सुख उसने देखे हैं। धूम-धाम और चाव हौसले से उसका विवाह करके फिर माता-पिता उसे भूल गए; कभी बुलाने का नाम तक न लिया; यहाँ तक कि देवीदीन खटिक को भी यह कहने का अवसर मिला कि यही दुनिया का दस्तूर है। दीनदयाल रहते हैं प्रयाग के समीप एक गाँव में और जालपा ब्याही है प्रयाग में। अधिक से अधिक दस कोस का फासला दोनों जगहों में होगा। फिर भी माता-पिता अपनी इकलौती पुत्री को भूल गए, यह कैसे अचरज की बात है! ससुराल में पुत्री के सुखद रहने का सुखद समाचार पाकर स्नेहशील माता-पिता यदि उसे न बुलाएँ तो यह बात संभवतः अधिक न खटकेगी; परन्तु विवाह के तीसरे ही दिन

जालपा के सभी गहने चोरी होजाने की हृदय बैठा देनेवाली निष्ठुर सूचना पाकर भी मानकी और दीनदयाल हृदयहीन-से कठोर बने रहे, यह बात प्रसंग की अस्वाभाविकता को तिगुना कर देती है।

३ आफ़िस से चार बजे घर लौटने पर रमा को पारसल मिलना (जो दो-ढाई बजे मिलना चाहिए था), फिर उसी दिन चार बजे के बाद रमा का उसे लौटा देना (जब कि पोस्टआफ़िस तीन बजे के बाद पारसल स्वीकारता नहीं), साधारण भूलें हैं। रमा का पिता से ३०) की जगह २०) की नौकरी बताना कितनी हँसी की बात है और वह भी उस हालत में जब वे जानते हैं कि यह जगह ३०) की ही है। जन्माष्टमी के दूसरे दिन रमेश बाबू को छुट्टी है, पर दयानाथ पुत्र को नौ बजे ही फटकार कर दफ़्तर चले जाते हैं। और फिर रमा भी दफ़्तर की तैयारी करने लगता है। क्या इनके दफ़्तर खुले हैं ? अट्ठारहवें परिच्छेद में रमा 'कोई नौ बजे' घूम कर लौटता है; परन्तु लगभग आधे घंटे बाद जब वह रतन के घर जाने को तैयार होता है, तब उसकी घड़ी में साढ़े आठ ही बजे हैं। यह क्यों और कैसे ?

४ आफ़िस से रुपये लाकर रमा का घर में रखना और घूमने चल देना कुछ जँचा नहीं। रतन जब एक दिन पहले आकर रुपए ले जाने की याद दिला गई थी और जिसकी चिन्ता में रमा दस दिन से बड़ा व्यस्त रहा है, उसी के लिये इतना निश्चिंत हो जाना कुछ खटकता है। यह ठीक है कि सभी को थोड़ी ही असावधानी से कभी कभी भारी हानि उठानी पड़ती है; परन्तु भूल का कारण पक्का होना चाहिए।

कथोपकथन द्वारा सामयिक समस्याओं के सम्बन्ध में चल-

ताऊ बातचीत इस कुशलता से करा देना कि पाठकों को पक्ष-विपक्ष के तर्कों का परिचय मिल जाय और मूल प्रश्न के विषय में लेखक की सम्मति का पता लगे, उपन्यासकार के वर्णन कौशल का परिचायक है। मूल प्रसंग से यह विवेचन भिन्न तो होगा, परन्तु लेखक को ऐसी सामग्री जुटानी और स्थिति लानी चाहिए कि यह विषयांतर पाठक को अखरे नहीं; अर्थात् मूल कथा का ही एक अप्रधान अँग जान पड़े। प्रेमचन्द्र जी इस प्रसंग में कभी कभी चूक गए हैं। उदाहरण के लिये अट्ठारहवें परिच्छेद में वकील साहब रमा को देखते ही लड़कियों की अनिवार्य शिक्षा के प्रस्ताव-विषयक प्रश्न करने लगते हैं जैसे राह ही देख रहे थे कि कोई आए और मैं अपने दिल का गुबार निकाल डालूँ। लगभग डेढ़ पेज का लम्बा लेक्चर वे झाड़ देते हैं, यद्यपि रात के दस बजे इन बातों के लिए न अवसर ही था और न उनके श्रोता रमानाथ को 'उनकी बातों में कोई आनन्द आया; क्योंकि वह तो इस समय दूसरी ही चिंता में मग्न था। ... ... उसका ध्यान झूले की ओर था–पृ० १०८।

६ इक्कीसवें परिच्छेद में जालपा अनेक प्रमाण देकर पति के सामने सिद्ध कर देती है कि तुम मुझे नहीं चाहते, तभी तो अपने मन का भेद मुझे बताते नहीं; पर रमा आधे पेज लम्बे उसके वक्तव्य का कोई उत्तर नहीं देता, जालपा कोई उत्तर चाहती भी नहीं और दोनों सो जाते हैं। कैसी विचित्र बात है! पति को चिंतित देख कर जालपा बार बार यह तो सोचती है कि ये मुझसे कुछ छिपाते हैं, इनके मन में कुछ है जो मुझे बताते नहीं; पर स्वयं उससे जमकर कभी यह नहीं पूछती कि बताओ तुम क्या

और क्यों सोचा करते हो ? पति की दुश्चिंता देख कर भी पत्नी का इस तरह निश्चिंत रहना खटकता ही है ।

७ नई बहू से ससुराल से थोड़ा परदा रखा जाता है, ठीक है । कुछ दिन ऊपरी टीमटाम भी रहता है । परंतु मध्यम वर्ग वाले न इस टामटाम का निभा पाते हैं और न समझदार बहू ही घर की सच्ची स्थिति से ज्यादा दिन तक अपरिचित रह पाती है । इस लिए तीन-चार महीने, यहाँ तक कि साल भर तक एक ही घर में रह कर भी जालपा का यह भ्रम बना रहना कि सास-ससुर हैं तो धनी, पर कंजूस हैं—मेरे लिए खर्च नहीं करना चाहते—उसके समझदार होने में ही भ्रम पैदा करता है । घरवालों का रहन-सहन, चाल-ढाल, ओढ़ना-पहनना, खान-पान मतलब यह कि घर की आय-व्यय और सास-ससुर की प्रकृति का परिचय देने वाली ऐसी बहुत सी बातें हैं जिनसे आठ-दस दिन में ही घर की ठीक ठीक स्थिति का पता जालपा को हो जाना चाहिए था । दूसरी बात यह कि पास-पड़ोस की सहेलियाँ भी इस काम में उसकी सहायता करने को स्वतः प्रस्तुत हो सकती थीं । अतः अन्त तक जालपा का भ्रम बना रहना खटकने की ही बात है ।

८ जालपा से प्रथम परिचय में ही वकील साहब की युवती पत्नी रतन का पति-प्रेम, सतान न होना जैसी बातों के संबंध में लगभग एक पेज की लम्बी गाथा गा देना कुछ खपा नहीं ।

९ हर नई बात रमा के लिये चकित करने वाली है । फिर भी कलकतिया पुस्तकालय में एक 'पत्र पर बहुत से आदमियों को झुके देख कर भी रमा का उत्सुक न होना खटकता है ।

॥ इति ॥